वाप्कोस दर्पण

अंक 112

जुलाई, 2025 से दिसम्बर, 2025

राजभाषा नियम/The Official Language Rule, 1976

राजभाषा नियम-2 में केन्द्रीय सरकार के कार्यालय, हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान, हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त आदि की परिभाषाएं दी गई हैं तथा राजभाषा कार्यान्वयन को ध्यान में रखते हुए राज्यों तथा संघ शासित प्रदेशों को निम्नानुसार तीन क्षेत्रों में बांटा गया है/In Official Language Rule-2 definitions of Central Government Offices, Working knowledge of Hindi, Proficiency in Hindi are given and taking in view of Official Language Implementation States and Union Territories are divided in the following three regions

"क" क्षेत्र – बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तराखण्ड, झारखंड, दिल्ली एवं अंडमान निकोबार द्वीप समूह।

"Region A" - means the States of Bihar, Haryana, Himachal Pradesh, Madhya Pradesh, Rajasthan, Uttar Pradesh, Chattisgarh, Uttarakhand, Jharkhand, Delhi and Andaman and Nicobar Islands;

"ख" क्षेत्र – गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब, चंडीगढ़, दादरा एवं नगर हवेली दमन दीव।

"Region B" - means the States of Gujarat, Maharashtra, Punjab, Chandigarh, Dadra and Nagar Haveli Damn Div.

"ग" क्षेत्र – आंध्र प्रदेश, अरूणाचल प्रदेश, असम, तमिलनाडु, मणिपुर, मिजोरम, गोवा, कर्नाटक, जम्मू कश्मीर, केरल, नागालैंड, उडीसा, सिक्किम, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल, लक्ष्यद्वीप, पुडुचेरी, तेलंगाना।

"Region C" means the States of Andhra Pradesh, Arunachal Pradesh, Assam, Tamilnadu, Manipur, Mizoram, Goa, Karnataka, J&K, Kerala, Nagaland, Orissa, Sikkim, Tripura, West Bengal, Lakshyadeep, Puducherry, Telengana.

वाप्कोस दर्पण

अंक 112

जुलाई, 2025 से दिसम्बर, 2025

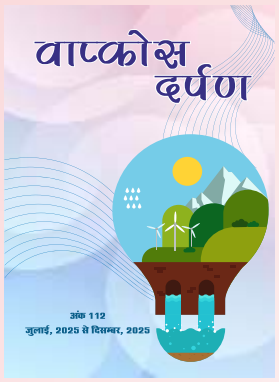

संरक्षक
शिल्पा सचिन शिंदे
अध्यक्ष सह प्रबंध निदेशक, वाप्कोस लिमिटेड

सह-संरक्षक
अमिताभ त्रिपाठी
निदेशक (वाणि. व मा.सं.वि.) एवं
अध्यक्ष, विराकास, वाप्कोस

संपादक मण्डल
राघवेन्द्र कुमार
प्रमुख (रा.भा.का.)
आशीष त्यागी
उप मुख्य प्रबन्धक (रा.भा.का.)
गौरव राघव
वरिष्ठ हिन्दी अनुवादक (रा.भा.का.)

सहयोग
शारदा रानी
वरिष्ठ सहायक (रा.भा.का.)

डिजाइन एवं मुद्रण
कृष्णा गुप्ता

(पत्रिका के अंतर्गत प्रकाशित लेखों में व्यक्त किए गए विचार लेखकों के अपने है। संपादन मण्डल का इसके लिए सहमत होना अनिवार्य नही है।)

केवल आन्तरिक वितरण हेतु

इस अंक में	पृष्ठ संख्या
संबोधन	01
सम्पादकीय	02
भाषा और देश	03-08
काष्ठदीप (18वीं सदी गुजराज)	09-11
"ए आई का उदय और वैश्विक सुरक्षा पर इसका प्रभाव"	12-13
नैमिषारण्य की शाम का अहसास	14-16
लटकाने वाला दीप (उत्तर मध्य भारत)	17-18
वाप्कोस जयपुर कार्यालय में हिंदी पखवाड़े का आयोजन	19
मिट्टी की पुकार	20
रूप का रखवाला घूँघट	21-22
साहित्य में वैज्ञानिक एवं सामाजिक चेतना	23-26
वंदेमातरम् की रचना	27-30
महारानी अहिल्याबाई होलकर	31-34
झूठ के नामकरण	35-36
हिंदी की स्थिति	37-40
बोधि गया	41-42
वाप्कोस गुरूग्राम कार्यालय में हिन्दी पखवाड़े का आयोजन	43-45
हिन्दी पखवाड़ा रिपोर्ट - हैदराबाद कार्यालय	46
"प्राकृतिक आपदाः- एक चुनौति"	47

संबोधन

यह हर्ष का विषय वाप्कोस की गृह पत्रिका "वाप्कोस दर्पण" का नियमित रूप से प्रकाशन किया जा रहा है। इसी श्रृंखला में "वाप्कोस दर्पण" के 112 वें अंक को आपके सम्मुख रखते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है। पत्रिकाओं के माध्यम से न केवल विभिन्न प्रकार की सूचनाएं प्राप्त होती हैं बल्कि यह कार्मिकों के मध्य विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम भी बनती हैं।

हम सभी जानते हैं हिंदी भाषा हम सभी के हृदय में बसी हुई है इसीलिए कार्यालय के सभी कार्मिक अपने अंदर की सृजनशीलता को जितनी सरलता के साथ राजभाषा हिंदी के माध्यम से अभिव्यक्त कर सकते हैं उतना किसी अन्य भाषा में अभिव्यक्त नहीं कर सकते।

हमें अपने कार्यक्षेत्र में नए संकल्प और लक्ष्य निर्धारित करने होंगे। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए हर चुनौती को स्वीकार करना होगा साथ ही समर्पित भाव से कार्य करना होगा।

मुझे विश्वास है कि हम अपनी व्यावसायिक गतिविधियों के साथ-साथ राजभाषा कार्यान्वयन के क्षेत्र में भारत सरकार के निर्देशों का अनुपालन सुनिश्चित करते हुए अपने संवैधानिक दायित्वों का पूरी निष्ठा के साथ निवर्हन करेंगे।

आर्थिक उदारीकरण और वैश्वीकरण के दौर में हिंदी की महत्वता समय के साथ-साथ बढ़ती जा रही है जो कि एक अच्छा संकेत है। इसलिए हमें राजभाषा हिंदी में अधिक से अधिक कार्य करते हुए अपने कारोबार को भी नई उंचाईयों पर ले जाना है। मैं पुन: इस पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए आप सभी को बधाई देता हूं।

शुभकामनाओं के साथ,

(अमिताभ त्रिपाठी)
निदेशक (वाणि.एवं मा.सं.वि.)
अध्यक्ष, विभागीय राजभाषा कार्यान्वयन समिति,

सम्पादकीय

वाप्कोस की गृह पत्रिका "वाप्कोस दर्पण" के 112वें अंक के माध्यम से अपने विचार अपने प्रबुध पाठकों तक पहुंचाते हुए मुझे अत्यन्त खुशी हो रही है। चूंकि हिंदी में प्रत्येक वातावरण के मुताबिक ढलने का लचीलापन मौजूद है इसलिए हमें अपनी भाषा की इसी विशेषता को उजागर करते हुए हिंदी को बाजारवादी-उदारवादी वैश्विक रूप देना होगा।

अभी हाल ही में हमने अपने कार्यालय में हिन्दी दिवस एवं हिन्दी पखवाड़े का आयोजन किया जिसमें सभी कार्मिकों ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। जिस तरह अपने दायित्वों व अधिकारों के प्रति सजग रहना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है, ठीक उसी तरह राजभाषा हिंदी का सम्मान करना भी प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है। ऐसे में हमें अपने सरकारी कामकाज को भी अधिक से अधिक हिंदी में करना आवश्यक

विभागीय पत्रिकाओं की भूमिका हिंदी का प्रयोग बढ़ाने में बहुत अहम होती है जिससे हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए अनुकूल वातावरण बनता है। वाप्कोस दर्पण पत्रिका को अपने पाठकों के लिए ज्ञानवर्धक व रोचक बनाने के लिए हमने हर संभव प्रयास किया है क्योंकि हमारा मुख्य उद्देश्य यही है कि पत्रिका के माध्यम से अधिक से अधिक लोग हिंदी से जुड़े। आगामी अंकों के लिए आपके बहुमूल्य विचारों और सुझावों की हमें प्रतीक्षा रहेगी।

इस पत्रिका में समाहित सामग्री पाठक वर्ग का ज्ञानवर्धन करेगी तथा हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए अपनी सार्थकता भी सिद्ध करेगी। आप सभी राजभाषा के कार्यों से जुड़े रहे, इसी अनुरोध व सदभावना के साथ "वाप्कोस दर्पण" का यह अंक आपके सम्मुख रखता हूं।

(राघवेन्द्र कुमार)
प्रमुख रा.भा.का.

भाषा और देश

साभार: शैलेश मटियानी

जिस दिन लार्ड मैकाले का सपना पूरा और गांधी जी का सपना ध्वस्त हो जाएगा, उस दिन देश पूरे तौर पर केवल 'इंडिया' रह जाएगा। हो सकता है, समय ज़्यादा लग जाए, लेकिन अगर भारतवर्ष को एक स्वाधीन राष्ट्र बनना है, तो इन दो सपनों के बीच कभी न कभी टक्कर होना निश्चित है।

जो देश भाषा में गुलाम हो, वह किसी बात में स्वाधीन नहीं होता और उसका चरित्र औपनिवेशिक बन जाता है। यह एक पारदर्शी कसौटी है कि चाहे वे किसी भी समुदाय के लोग हों, जिन्हें हिंदी को राष्ट्रभाषा मानने में आपत्ति है, वह भारतवर्ष को फिर से विभाजन के कगार तक ज़रूर पहुँचाएँगे।

लार्ड मैकाले का मानना था कि जब तक संस्कृति और भाषा के स्तर पर गुलाम नहीं बनाया जाएगा, भारतवर्ष को हमेशा के लिए या पूरी तरह, गुलाम बनाना संभव नहीं होगा। लार्ड मैकाले की सोच थी कि हिंदुस्तानियों को अँग्रेज़ी भाषा के माध्यम से ही सही और व्यापक अर्थों में गुलाम बनाया जा सकता है।

अंग्रेज़ी जानने वालों को नौकरी में प्रोत्साहन देने की लार्ड मैकाले की पहल के परिणामस्वरूप काँग्रेसियों के बीच में अंग्रेज़ी परस्त काँग्रेसी नेता पं. जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में एकजुट हो गए कि अंग्रेज़ी को शासन की भाषा से हटाना नहीं है अन्यथा वर्चस्व जाता रहेगा और देश को अंग्रेज़ी की ही शैली में शासित करने की योजनाएँ भी सफल नहीं हो पाएँगी।

यह ऐसे अंग्रेज़ीपरस्त काँग्रेसी नेताओं का ही काला कारनामा था कि अंग्रेज़ी को जितना बढ़ावा परतंत्रता के 200 वर्षों में मिल पाया था, उससे कई गुना अधिक महत्व तथाकथित स्वाधीनता के केवल 50 वर्षों में मिल गया और आज भी निरंतर जारी है।

जबकि गांधी जी का सपना था कि अगर भारतवर्ष भाषा में एक नहीं हो सका, तो ब्रिटिश शासन के विरुद्ध स्वाधीनता संग्राम को आगे नहीं बढ़ाया जा सकेगा। भारत की प्रादेशिक भाषाओं के प्रति गांधी जी का रुख उदासीनता का नहीं था। वह स्वयं गुजराती भाषी थे, किसी अंग्रेज़ीपरस्त काँग्रेसी से अंग्रेज़ी भाषा के ज्ञान में उन्नीस नहीं थे, लेकिन अंग्रेज़ों के विरुद्ध स्वाधीनता संग्राम छेड़ने के बाद अपने अनुभवों से यह ज्ञान प्राप्त किया कि अगर ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध स्वाधीनता संग्राम को पूरे देश में एक साथ आगे बढ़ाया जा सकता है, तो केवल हिंदी भाषा में, क्यों कि हिंदी कई शताब्दियों से भारत की संपर्क भाषा चली आ रही थी।

भाषा के सवाल को लेकर लार्ड मैकाले भी स्वप्नदर्शी थे, लेकिन उद्देश्य था, अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से गुलाम बनाना। गांधी जी स्वप्नदृष्टा थे स्वाधीनता के और इसीलिए उन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया।

स्वाधीनता संग्राम में सारे देश के नागरिकों को एक साथ आंदोलित कर दिखाने का काम गांधी जी ने भाषा के माध्यम से ही पूरा किया और अहिंसा के सिद्धांत से ब्रिटिश शासन के पाँव उखाड़ दिए।

पूरे विश्व में एक भी ऐसा राष्ट्र नहीं है, जहाँ विदेशी भाषा को शासन की भाषा बताया गया हो, सिवाय भारतवर्ष के। हज़ारों वर्षों की सांस्कृतिक भाषिक परंपरावाला भारतवर्ष आज भी भाषा में गुलाम है और आगे इससे भी बड़े पैमाने पर गुलाम बनना है। यह कोई सामान्य परिदृष्टि नहीं है। अंग्रेज़ी का सबसे अधिक वर्चस्व देश के हिंदी भाषी प्रदेशों में है।

भाषा में गुलामी के कारण पूरे देश में कोई राष्ट्रीय तेजस्विता नहीं है और देश के सारे चिंतक और विचारक विदेशी भाषा में शासन के प्रति मौन है। यह कितनी बड़ी विडंबना है कि भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा के सवालों को जैसे एक गहरे कोहरे में ढँक दिया गया है और हिंदी के लगभग सारे मूर्धन्य विद्वान और विचारक सन्नाटा बढ़ाने में लगे हुए हैं। राष्ट्रभाषा के सवाल पर राष्ट्रव्यापी बहस के कपाट जैसे सदा-सदा के लिए बंद कर दिए हैं। कहीं से भी कोई आशा की किरण फूटती दिखाई नहीं पड़ती।

सारी प्रादेशिक भाषाएँ भी अपने-अपने क्षेत्रों में बहुत तेज़ी से पिछड़ती जा रही हैं। अंग्रेज़ी के लिए शासन की भाषा के मामले में अंतर्विरोध भी तभी पूरी तरह उजागर होंगे, जब यह प्रादेशिक भाषाओं की संस्कृतियों के लिए भी ख़तरनाक सिद्ध होंगी। प्रादेशिक भाषाओं की भी वास्तविक शत्रु अंग्रेज़ी ही है, लेकिन देश के अंग्रेज़ीपरस्तों ने कुछ ऐसा वातावरण निर्मित करने में सफलता प्राप्त कर ली है जैसे भारतवर्ष की समस्त प्रादेशिक भाषाओं को केवल और केवल हिंदी से ख़तरा हो।

सुप्रसिद्ध विचारक हॉवेल का कहना है कि किसी भी देश और समाज के चरित्र को समझाने की कसौटी केवल एक है और वह यह कि उस देश और समाज की भाषा से सरोकार क्या है। जबकि भारतवर्ष में भाषा या भाषाओं के सवालों को निहायत फालतू करार दिया जा चुका है। लगता है भारत वर्ष की सारी राजनीतिक पार्टियाँ इस बात पर एकमत हैं कि हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा नहीं दिया जाए और देश में शासन की मुख्य भाषा केवल और केवल अंग्रेज़ी को ही रहना चाहिए।

भाषा के मामले में भारतवर्ष को छोड़कर किसी भी स्वाधीन राष्ट्र का रुख ऐसा नहीं है। अगर इंग्लैंड का कोई प्रधानमंत्री अपने देशवासियों को हिंदी में संबोधित करे, तो स्थिति क्या बनेगी? भारतवर्ष भी एक स्वाधीन राष्ट्र तभी बन पाएगा जब अंग्रेज़ीपरस्त राजनेताओं से मुक्ति मिलेगी। इससे पहले विदेशी भाषा से मुक्ति पाना संभव नहीं है।

हिंदी संयुक्त राष्ट्रभाषा बन कर रहेगी

–सुरेशचंद्र शुक्ल 'शरद आलोक'

मारीशस हा या सूरिनाम हो, हिंदी का वह तीर्थ धाम हो ।
कोटि-कोटि के मन में मुखरित, हिंदी का चहुओर नाम हो ।।

हिंदी विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली तीसरी भाषा है। यह बहुत दु:ख की बात है कि अनेक प्रयासों के बावजूद हिंदी को संयुक्त राष्ट्र की भाषाओं में अभी तक स्थान नहीं प्राप्त हुआ है।

विश्व के चार बहुचर्चित एवं सबसे बड़े लोकतांत्रिक देशों में भारत का नाम और स्थान महत्वपूर्ण होने के बाद भी उसकी एक अरब जनता की राष्ट्रभाषा हिंदी को नज़रंदाज़ किया जा रहा है जो उचित नहीं है।

हिंदी को विश्व भाषा बनाने के लिए सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में दो बातों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। पहला हमारी सरकार संयुक्त राष्ट्रसंघ में इसे मान्यता दिलाए, दूसरे सभी लोग सरकारी और रोज़मर्रा के जीवन में हिंदी को अपनाएँ और अपने बच्चों और विदेशियों को हिंदी प्रयोग में प्रोत्साहन दें।

यह हिंदी और भारत ही नहीं, पूरे विश्व के लिए बहुत गर्व का विषय है कि हमारे प्रधानमंत्री हिंदी के सर्वश्रेष्ठ वक्ता हैं, सहृदय कवि हैं तथा उन्होंने विश्व हिंदी सम्मेलन के लिए एक अच्छी राशि को मंजूरी दी है। इतना ही नहीं हमारे विदेश राज्य मंत्री दिग्विजय सिंह का बयान कि सरकार हिंदी के संयुक्त राष्ट्रसंघ की भाषा बनने पर सौ करोड़ रुपये खर्च करेंगे तथा सरकार दूसरे देशों से सहयोग लेने के लिए लाबी कार्य भी करेगी। यह हर भारतीय, देश-विदेश के हिंदी प्रेमियों, विद्वानों और शिक्षकों के लिए गर्व की बात है।

एक बात की कमी है कि आयोजक सदस्यों में हमारे जैसे विदेशों में हिंदी सेवियों को, जो हिंदी और भारत के साथ पूरी निष्ठा के साथ कार्य कर रहे हैं बहुत ज़्यादा अनदेखा किया जाता है जो न्यायसंगत नहीं है। हिंदी की अनेक वेब पत्रिकाएँ निकलती हैं। भारत कंप्यूटर और वेब सेवा में विश्व का महत्वपूर्ण देश है जिससे पूरी दुनिया से निजी और सरकारी कंपनियाँ सेवा प्राप्त कर रही हैं।

सम्मेलन के पूर्व भारत में छपे लेखों में यह बात उठाई गई थी कि हिंदी सम्मेलन की आयोजन समिति में नई तकनीक को सम्मिलित किया जाए तथा समय के साथ चला जाए न कि पुराने ज़माने की तरह। सम्मेलन में रजिस्ट्रेशन कराने वाले प्रतिनिधियों और भाग लेने वाले प्रतिनिधियों के लेख प्रकाशित किए जाएँ और स्मारिका में सम्मेलन के आरंभ से पहले ही उनके लेख प्रकाशित कर दिए जाएँ ताकि पत्र भेजने वालों को जवाब मिले।

सम्मेलन के लिए जो फ़ोन नंबर दिए गए हैं पता नहीं कब वह फ़ैक्स बन जाते हैं और व्यस्त रहते हैं। जो कई ई मेल पते दिए गए हैं। उनमें कुछ काम नहीं करते। जो आयोजक समिति के सदस्य हैं सभी हिंदी के अच्छे जानकार हैं उसके प्रति निष्ठा भी है पर न तो वे कंप्यूटर के जानकार हैं न ही इस कार्य का अनुभव है। सूचनाएँ लेने के बाद सूचना का उत्तर नहीं मिलता बल्कि जब वह अपनी बात कहते हैं तो सिस्टम को दोष देते हैं।

जो भी हो हम सभी के लिए गर्व की बात है कि सातवाँ विश्व हिंदी सम्मेलन सूरीनाम की धरती पर हो रहा है। सारे विश्व के हिंदी प्रेमियों की निगाहें इस सम्मेलन पर टिकी हैं। पूरे विश्व से हिंदी के विद्वान एकत्र हो रहे हैं। भारत के विद्वान भी हिस्सा ले रहे हैं। वेब पत्रिकाएँ अपने विशेष अंक, लेख, साक्षात्कार प्रकाशित कर रही हैं और इस विश्व हिंदी यज्ञ में अपनी-अपनी आहुति दे रही हैं। विदेशों में रहने वाले हिंदी प्रेमी उस देश की राजनीति में भी हिस्सा लें ताकि अपनी माँगें मनवाई जा सकें तथा हिंदी व भारतीय संस्कृति की पताका को उसका अपना हक मिल सके।

पिछले विश्व हिंदी सम्मेलनों के कुछ प्रसंग-

शंकर दयाल सिंह एक लेखक होने के साथ-साथ राज्यसभा सदस्य थे। चौथे विश्व हिंदी सम्मेलन में जब विभिन्न विषयों पर सत्र चल रहे होते थे तब हमारे नेतागण घूम रहे होते थे। जब विदेशों में हिंदी पत्रकारिता पर सत्र था तब मेरा नाम ग़ायब था। सत्र का संचालन कर रहे थे भारत के सुप्रसिद्ध संपादक स्व. नरेंद्र मोहन। जब स्थिति से उन्हें अवगत कराया तो पहले वह असहमत थे और बाद में सहमत ही नहीं हुए बल्कि मित्र हो गए। सरकारी और ग़ैरसरकारी प्रतिनिधिमंडल दोनों का यह दायित्व होता है कि वे पूरे सम्मेलन को गंभीरता से लें।

चौथे विश्व हिंदी सम्मेलन में जब रिज़ोलेशन समिति की बैठक चल रही थी हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान विद्यानिवास मिश्र जी को, जो समिति के सदस्य थे, समिति के सदस्यों ने बुलाना उचित नहीं समझा। तब मैं आदरणीय मिश्र जी को आग्रह करके ले गया जहाँ बैठक चल रही थी। चौथे विश्व हिंदी सम्मेलन की प्रदर्शनी का हाल यह था कि बहुत से महत्वपूर्ण लेखकों की तस्वीरें, दुनिया के विभिन्न देशों में छपने वाली पत्रिकाओं से ग़ायब थीं। मेरे साथ विजयेंद्र स्नातक जी भी बातचीत करते हुए प्रदर्शनी का अवलोकन कर रहे थे।

पर चौथे विश्व हिंदी सम्मेलन में सभी के आदर सत्कार का बहुत ध्यान दिया जा रहा था। वहाँ के मंत्री हम सभी प्रतिनिधियों से बहुत घुल- मिल गए थे। चौथे विश्व हिंदी सम्मेलन में जर्मनी, इटली, रूस, पोलैंड, ब्रिटेन के प्रतिनिधियों ने अपनी व्यक्तिगत समस्याओं और कार्यक्रम की अनियमितताओं को सुलझाने के लिए मुझे आगे रखा। मॉरिशस के सरकारी-ग़ैर सरकारी प्रतिनिधियों (जो लेखक, शिक्षक और अपनी भाषा संस्कृति के लिए योगदान दे रहे जिनमें दोनों पुरुष और नारी सम्मिलित थे।) ने भरपूर सहयोग ही नहीं दिया बल्कि यात्रा की दो तीन अनियमितताओं को भी तुरंत दूर कर दिया। उन्होंने टैक्सी और दूसरे बिलों का भुगतान भी कराया।

यह बहुत काबिले-तारीफ़ है। जबकि 1983 में दिल्ली में संपन्न हुए तीसरे विश्व हिंदी सम्मेलन में उपेंद्रनाथ अश्क जी के कपड़ों को लेकर कुछ लेखकों के व्यवहार की निंदा 80 से अधिक लेखकों ने लिखित रुप से की थी। शिकायत में हस्ताक्षर करने वाले लेखकों में धर्मवीर भारती, हरिवंश राय बच्चन जी भी थे। शिकायत का विरोध करने वाले अभी भी अपनी हरकत से बाज नहीं आते उनका कार्य केवल एक दूसरे के सुझावों को चुगली की तरह व्यक्त करना है ऐसे लोगों को मॉरिशस से बहुत कुछ सीखना चाहिए।

जहाँ तक लंदन में हुए विश्व हिंदी सम्मेलन की बात है उसमें अनेक सुधार हो चुके थे। सभी खुश और नाखुश तथा सत्र में सम्मिलित और सत्र में शामिल न हो पाने वाले सभी लेखकों, विद्वानों को अपनी बात कहने का अवसर मिला। इसका कारण आयोजक समिति में अकादमिक, संगठन और प्रबंधन ने भरपूर तालमेल होना था।

एक बात मुझे लंदन में मज़ेदार लगी जब भोजन करने के बाद या आयोजन के बाद प्रतिनिधि सड़क पर चहल-कदमी करने लगते तो दो तीन प्रतिनिधि यह कहते सुने जाते थे कि बाहर मत जाएँ पुलिस आ जाएगी। इस चेतावनी ने अच्छा काम किया। इससे सभी झुंड में रहे। लोगों के मन में अभी भी भारतीय पुलिस और अंग्रेज़ों की गुलामी का ख़ौफ़ था। पर लोग यह भूल गए कि अब ब्रिटेन में वह ज़माना नहीं रहा। बहुत कुछ बदल गया है। यहाँ (ब्रिटेन) की पुलिस को देखकर सुरक्षा का अहसास होता है क्यों कि वह आपको रास्ता बताती है, फ़ोन के लिए पैसे नहीं हैं, फ़ोन करवाती है। आप भूखे, बीमार हैं उसके निदान में सहायता करती है। स्कैन्डिनेवियन देशों में स्थिति और अच्छी है।

यदि आप छठे विश्व हिंदी सम्मेलन में आए थे तब आपको श्रीमती चित्रा कुमार, के. बी. एल. सक्सेना, श्रीमती उषा वर्मा अपने दल के साथ आपका हर शैली में स्वागत करते मिले होंगे। यह बहुत खुशी की बात है कि इस सम्मेलन में अमरीका में विश्व हिंदी न्यास के रामदास चौधरी, दक्षिण अफ्रीका के. वी. रामविलास, पोलैंड की डॉ. दानिता स्वासीक, मारीशस के मित्र रामदेव धुरंधर, तज़ाकिस्तान के एच. रजारोव, फ्रांस के प्रो. एनीमोतो, ब्रिटेन की अचला शर्मा, चेक गणराज्य के डॉ. स्वतीस्लाव कोस्तिक, म्यांमा के ऊपार्गो और चीन के प्रो येंग हांगयूनद को भी सम्मानित किया जा रहा है।

आप चाहें तो हिंदी प्रचार–प्रसार और अधिक बढ़ सकता है।
आप शादी, जन्महिंदी पुस्तकों को उपहार स्वरूप भेंट करें ।

अंत में मेरा यह निवेदन है कि विदेशों में रहने वाले भारतीय और हिंदी प्रेमी जब भारत पत्र भेजें तब पता हिंदी में लिखें केवल नगर और देश का नाम हिंदी और अंग्रेज़ी दोनों में लिखें। जब ये लोग भारत जाएँ तब केवल हिंदी में ही बात करें।

आप यह सोचें कि हिंदी को आपने क्या दिया है और क्या दे सकते हैं?

दीप ज्योति नमस्तुते!
–पूर्णिमा वर्मन

फिर दीप जल उठे। करोड़ों हाथ जुड़ गए ज्योति की आराधना में।
नमित हो गए मन प्रार्थना में। उत्सव जागा हर ओर और गूँज उठे
कहीं ये शब्द–

दीप मेरे जले अकंपित–घुल अचंचल
स्वर प्रकंपित कर दिशाएँ
मीड सब भूकी शिराएँ
गा रहे आंधी प्रलय
तेरे लियं ही आज ही मंगल

महादेवी वर्मा की इस कविता में दीपक के प्रति वहीं लगन मिलती है जो आदिकाल में अग्नि के प्रति पाई जाती होगी। उस समय मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु अंधकार था और इसका हरण करने वाला प्रकाश सबसे बड़ा मित्र। रात के अंधकार के बाद उषा के उजास को देखकर वैदिक कवि शीघ्र प्रकाश की कामना से कहता है " हे उषा की पहली किरण, तुम अंधकार को ऋण की तरह दूर कर दो।" प्रकाश हमें देखने की शक्ति देता है। वस्तु की सही पहचान के लिये ज्योति आवश्यक है। बृहद आरण्यक उपनिषद में इसी लिये अंधकार से ज्योति की ओर जाने की कामना की गई है।

असतो मा सद्गमय
तमसो मां ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतं गमय

ऋग्वेद में इंद्र के बाद अग्निदेव की प्रशंसा में ही सबसे अधिक श्लोक मिलते हैं। अग्नि के तीन रूपों का विशद वर्णन मिलता है - पृथ्वी पर अग्नि, अन्तरिक्ष में विद्युत और आकाश में सूर्य। उसके जन्म के विषय में कहा गया है कि काल के संघर्ष-मंथन से उसका जन्म हुआ। अग्नि अंधकार को मिटाता है, राक्षसों को डराता, प्रकाश का आह्वान करता, चिर युवा और प्राचीन पुरोहित है। अग्निमीळे पुरोहितं "ऋग्वेद"।

अग्नि के मसूढे तेज हैं। मृत और काल उसका भोजन है। वह गृहपति के साथ साथ विश्वपति है, वह अत्यंत विद्वान और कवि है, देव तथा दानव के बीच अमरदूत है, वह देवों को यज्ञ की ओर आकर्षित करता है, वह पारिवारिक जीवन का बड आधार है। ऋग्वेद में माना गया है कि भृगु ऋषि ने अग्नि की खोज की। वहीं से अग्नि संस्था का जन्म हुआ - इंद्र ज्योतिः अमृतं मर्तेषु "ऋग्वेद" तथा "सूर्यांश संभवो दीपः" अर्थात सूर्य के अंश से दीप की उत्पत्ति हुई। जीवन की पवित्रता, भक्ति, अर्चना और आशीर्वाद का दीप एक शुभ लक्षण माना जाता है। सूर्य के अंश से पृथ्वी की अग्नि को जिस पात्र में स्थापित किया गया वह आज सर्वशक्तिमान दीपक के रूप में हमारे घरों में है।

शुभम करोति कलयाणम् धन सम्पदा
शत्रुबुद्धि विनाशाय दीपज्योति नमस्तुते।।

सुन्दर और कल्याणकारी, आरोग्य और संपदा को देने वाले हे दीप, शत्रु की बुद्धि के विनाश के लिए हम तुम्हें नमस्कार करते हैं। ऐसे मंगलदायक दीप के लिये भक्त के मन में आदर युक्त भावना उत्पन्न हुई होगी और इसी ने दीपक को कलात्मक रूपा से गढ़ना शुरू कर दिया होगा।

काष्ठदीप (18वीं सदी गुजराज)

ज्योति अग्नि और उजाले का प्रतीक दीपक कितना पुरातन है इसके विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। गुफाओं में भी यह मनुष्य के साथ था। कुछ बड़ी अंधेरी गुफ़ाओं में इतनी सुन्दर चित्रकारी मिलती है जिसे बिना दीपक के बनाना सम्भव नहीं था। भारत में दिये का इतिहास प्रामाणिक रूप से 5000 वर्षों से भी ज्यादा पुराना हैं जब इसे मुअन-जो-दडो में ईंटों के घरों में जलाया जाता था। खुदाइयों में वहाँ मिट्टी के पके दीपक मिले है। कमरों में दियों के लिये आले या ताक़ बनाए गए हैं, लटकाए जाने वाले दीप मिले हैं और आवागमन की सुविधा के लिए सड़क के दोनों ओर के घरों तथा भवनों के बड़े द्वार पर दीप योजना भी मिली है। इन द्वारों में दीपों को रखने के लिए कमानदार नक्काशीवाले आलों का निर्माण किया गया था।

आरंभिक दीप पात्र स्फटिक, पाषाण या सीप का था। मिट्टी को गढने और पकाने के आविष्कार के साथ यह मिट्टी का बना। आज जिस दिये को हम जलाते है वह अनादिकाल से वैसा ही चला आ रहा है। सदियों के बाद भी उसमें विशेष फेरबदल नहीं हुआ। वही मिट्टी का पात्र रूई की बाती और घी या तेल। राम के अयोध्या लौटने पर जो दीप जलाए गए थे वे भी ऐसे ही थे।

मंदिरों और महलों में इन दीपों के समांतर अलंकृत दीपों की बड़ी श्रेणी मिलती हैं। श्रेष्ठ जन व्यापारियों और धनिकों द्वारा बड़े कलात्मक दियों का प्राचीन काल से ही प्रयोग होता रहा हैं। पत्थर, धातु, कीमती रत्नों, सोने और चांदी के दीपों के भी प्रमाण मिलते है। ये छोटे बड़े सभी आकारों के थे। धीरे धीरे दीप स्तंभ भी प्रचलन में आ गए। दीपकों के भी दो विभाग किए गए। नित्य उपयोग में आने वाले दीप और विशेष आयोजनों में प्रयुक्त किए जाने वाले नैमित्तिक दीप।

नैमित्तिक दीपों के भी कई प्रकार हैं -निरन्तर जलने वाले नन्दादीप, जलसे बैठकों में जलने वाले बड़े आकार के दीप, पूजा के समय जलने वाले छोटे नीराजन दीप, आरती दीप और शयन कक्ष में रति प्रदीप। आरती दीप के हत्थे को सर्पाकृति, मत्स्याकृति, मकराकृति तथा कीर्तिमुखाकृति बनाया जाने लगा जो बड़े ही कलात्मक होते थे। इस प्रकार के दीपकों में नागों की अनेक प्रकार की कुंडलियों का विनियोग मिलता है। एक से लेकर 51 दीपशिखाएँ तक एकसाथ जलाई जानेवाली आरती मिलती है।

कलात्मक दीपों को मटके या सुराही के आकार में भी ढाला गया। कुछ दीप तोते और मोर के आकार में बने। सिंह और हाथी के आकार भी खूब प्रचलित हुए। नारी के आकार के दीप बनाए गए और देवी-देवताओं में विष्णु, लक्ष्मी, गणेश और सूर्य को दीप के आधारों के लिए चुना गया। फिर वृक्ष दीप बने जिनकी हर डाल पर बाती रख कर जलाई जाती तो पूरा वृक्ष जगमगा उठता।

मंदिर के गर्भ गृह में मूर्ति के दोनों ओर जलनेवाले दीपों को नंदादीप कहा गया। गर्भ गृह के सामने की दोनों ओर खडे-ख़डे ज़लने वाले दीप को दीपलक्ष्मी और महाद्वार के सामने दीप मालिका। दीपलक्ष्मी पीतल या पाषाण में बनाई गई जो बालिश्त भर से लेकर मनुष्य की उँचाई तक में बनी। इन उँचे दीप स्तंभो की बनावट में कहीं-कहीं पर दीपों के लिए आले बनाए जाते है और पास ही पत्थरों की नक्काशीदार शाखाएं। इन पर पंक्तिबध्द दीपकों को रखा जाता, जिनके प्रकाशित होने पर मंदिर का समूचा परिसर आलोकित हो उठता। मंदिर के प्रवेशद्वार पर द्वार रक्षक के रूप में ढले दीप-स्तंभ आज भी देखने को मिलते हैं। दीपमालिका के समय इनकी पंक्तिबद्ध कतारों की शोभा देखते ही बनती है।

मुगलकाल का एक वलयेज्ञ दीप भी मिला हैं। इस गोलाकार दीप को किसी भी तरफ घुमाया जाए, उसके भीतर की शिखा एक निश्चित दिशा की ओर ही रहती हैं। ये देखने में अत्यन्त आकर्षक, महीन जालियों से छनते प्रकाश वाले गोलाकर दीप जब बडी संख्या में शाही जनानखानों के शीशे के फर्श पर प्रकाशित होते होंगे, तब यहाँ अवर्णनीय सौंदर्य बिखरता होगा।

दीपावली तो विशेष रूप से दीपों का त्योहार है, लेकिन इससे पहले आनेवाले नवरात्र में दीपों की प्रशस्ति में गौरवगीत गाए जाते हैं जो गरबा के नाम से जाने जाते हैं। गरबों के मटके में जलता हुआ दीप अपने हिरण्यगर्भ स्वरूप को साकार करता हैं।

मथुरा के निकट ब्रज में होली के बाद तीन दिनों तक एक लोकनृत्य किया जाता है। इसमें सोलह शृंगार से परिपूर्ण एक कन्या सिर पर कलश, कलश पर दीप और हाथों में कलश और दीप लेकर नृत्य करती है। ऐसी मान्यता है कि इस दीप से वसंत का आगमन जल्दी होता हैं।

पंजाब में विवाह के अवसर पर नागो नामक दीप नृत्य की परम्परा है। एक मटके के मुंह को गेहूँ के आटे से बन्द कर के, उस पर पंचमुखी दीपक रखा जाता है। वरपक्ष की एक सुहागन महिला इसे अपने सिर पर धारण करती हैं और कन्या पक्ष की महिलाएँ इसके चारों ओर घूमती हैं।

मध्यप्रदेश, गुजरात तथा राजस्थान और उत्तर प्रदेश की कुछ लोक जातियों में भी दीपनृत्य की परम्परा हैं।

साहित्य में दीपक का अपना अलग स्थान है। रामायण के पन्नों में अनेक दीप मिलते हैं। बहुत से दीपों में सुगंधित तेल जलाए जाने का वर्णन हैं। ये दीप प्रकाश के साथ सुगंध भी बिखेरते थे।

हनुमान जब लंका के राजा रावण की नगरी पहुँचे तो उन्हें सुनहरे दीपों को देख कर भ्रम हुआ कि कहीं वे स्वर्ग में तो नहीं आ गए। उन्हें वहां "हारे हुए जुआरी की तरह पीले पड़े हुए और जलते हुए" स्वर्णदीप दिखाई दिए।

"ए आई का उदय और वैश्विक सुरक्षा पर इसका प्रभाव"

ए आई कम्यूटर विज्ञान की वह शाखा है जो कम्यूटर को इंसान की तरह सोचने समझने, सीखने, व्यवहार करने व समस्याओं का हल निकालना बताती है। जॉन मैकार्थी इसे जनक माने जाते है। सन् 1950 के दशक में इस प्रौद्योगिकी का उदय हुआ और 1970 के दशक में इस प्रौद्योगिकी ने जोर पकड़ी। जापान में 1970 के दशक में ए आई का उपयोग एवं प्रयोग में बढ़ोत्तरी आयी एव तत्पश्चात पूरे दुनिया में इसका विस्तार हुआ। भारत में वित्तीय वर्ष 2018-19 के बजट भाषण के दौरान वित्त मंत्री ने राष्ट्रीय कृत्रिम बुद्धिमता (AI) प्रोग्राम की घोषणा की जिसके उपरान्त देश में ए आई के रूप में अभूतपूर्व विकास हुआ है।

वर्तमान में देश या यूँ कहे दुनिया में कोई भी सेक्टर कृत्रिम बुद्धिमत्ता से अहूता नही है तथा उस सेक्टर के विकास में ए आई का महत्वपूर्ण योगदान है। आज कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने इंसानो की जिन्दगी बदल दी है और इंसान अपने दैनिक जीवन में इसका भरपूर प्रयोग कर रहा है। देश व दुनिया में ए आई का डाटा विश्लेषण, कम्प्यूटर प्रोग्राम, कृषि, शिक्षा एव प्रशिसण चिकित्सा, यातायात, उद्योग, सेवा क्षेत्र, भाषा प्रसंस्करण, स्पीच रिकगनीशन, इमेज व वीडियो प्रासेसिंग, अन्तरिक्ष, सामरिक सुरक्षा नीति निर्माण, सतत विकास आदि क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान है। ये कहा जा सकता है कि ए आई ने मानव जगत पर अपनी गहरी छाप छोड़ीं है और वैज्ञानिकों का दावा है कि 2045 तक यह मनुष्यो से तेज सोच, समझ और कार्य कर सकेगा। यदि ऐसा हुआ तो मानव विकास का पथ सदा के लिए बदल जायेगा, जिसके सकारात्मक और नकारात्मक दोनो प्रभाव होंगा।

ए आई ने जहॉ हमारे जीवन में बहुत सारे सकारात्मक बदलाव कियें है व हमारे दैनिक क्रिया कलापों को सुगम बनाया है वही इसके कई नकारात्मक और भारी दुष्परिणाम भी सामने आ रहे हैं।

लोगो को आशंका है कि ए आई से उनकी निजता का हनन हो सकता है और ऐसा हो भी रहा है। इसकी डीपफेक प्रौद्योगिकी ने सच और झूठ में फर्क मुश्किल कर दिया है। ए आई का प्रयोग करके व्यक्ति आसानी से विविध प्रकार की सूचनाएँ एकत्रित कर सकता है और उसका दुरूपयोग भी कर सकता है। ए आई द्वारा साइबर सुरक्षा को बहुत खतरा उत्पन्न हुआ है और डिजिटल सेवाऐं व्यापक रूप से बाधित हो सकती है। लोगो को यह भी आशंका है कि भविष्य में ए आई लोगो का रोजगार छीन लेगा जिसका व्यापक प्रभाव बैकिंग, कला, शिक्षण-प्रशिक्षण, शोध व अन्य सेवा क्षेत्र पर पड़ने वाला है। ए आई का प्रयोग करके क्षण भर में अपार सूचनाएँ और उनका विश्लेषण करके आतंकी और अराजक तत्वो द्वारा देश में अस्थिरता लायी जा सकती है, अफवाहें फैलाई जा सकती हैं जिससे शांति व सामाजिक सूरक्षा भंग हो सकती है। इस प्रकार ए आई के कई नकारात्मक और दुष्परिणाम भी दिख रहे हैं इसलिए कृत्रिम बूद्धिमत्ता (AI) पर विनिमय व व्यापक नीतियों की आवश्यकता है जिससे इसका उपयोग जीवन को सरल और समृद्ध बनाने में हो सके और ए आई के विध्वंसकारी उपयोग रोका जा सके।

ए आई का सामरिक क्षेत्र में बहुतायत से उपयोग हो रहा है जिससे स्वायत्त और घातक हथियार बनाये गये है। सैन्य क्षेत्र मे सैटेलाइट द्वारा डाटा संग्रहण, उनका विश्लेषण और विश्लेषण के आधार पर फौरन निर्णय और त्वरित कार्यवाही में ए आई का महत्वपूर्ण योगदान है। ए आई का प्रयोग करके स्वायत्त घातक हथियार ड्रोन व जहाज बने हैं जो क्षण भर में प्रलय लाने में सक्षम है। सैन्य कार्यवाही के दौरान ए आई द्वारा तुरन्त निर्णय लेने में आसानी हुई है परन्तु यदि डाटा का अभाव हो तो ए आई गलत निर्णय का अनुमोदन कर सकता है जिसका खमियाजा मानव जगत को भुगतना पड़ सकता है। ए आई नीति गत निर्णय लेने मे सक्षम नहीं है और युद्ध के दौरान असैन्य क्षेत्रों में भी नुकसान हो सकता है। ए आई का प्रयोग करके सैन्य रोबोट बनाए जा रहे है जिनके प्रयोग से महज कुछ देशों मे शक्ति का केन्द्रीयकरण हो सकता है और इससे एक वैश्विक खतरा उत्पन्न हो सकता है, किसी भी देश में शांति और सुरक्षा भंग हो सकती है।

दुश्मन देश ए आई का उपयोग करके महत्वपूर्ण और संवेदनशील सूचनाओं को लीक कर सकते है तथा उन सूचनाओं का उपयोग करके देश में अस्थिरता और अराजकता की स्थिति उत्पन्न कर सकते है। इसमें महिलाएँ, बच्चे व बुजुर्ग काफी प्रभावित व उनको हानि पहुँच सकती है।

वर्तमान में युद्ध का दौर है तथा ताकतवर देश छोटे-छोटे देशों को अपनी बात मानने के लिए मजबूर करते हैं। यदि कम शक्तिशाली देश अपनी संप्रभुता अक्षुण्ण बनाने की कोशिश करे तो दुश्मन देश ए आई के माध्यम से खुफिया जानकारी हासिल करके वहाँ अस्थिरता पैदा करते हैं। फिलहाल में श्रीलंका, बांग्लादेश, नेपाल आदि देशों में अस्थिरता और अराजकता देखने को मिली हैं। वहाँ सरकारे गिर गयी और सैकड़ो लोग मारे गये। कहीं न कहीं इन सब में ए आई प्रौद्योगिकी का नकारात्मक प्रयोग हुआ और जिसका दुष्परिणाम सामने है।

ए आई का प्रयोग साइबर हमलो में हो रहा है जिससे खुफिया जानकारी, व अन्य महत्वपूर्ण दस्तावेज हासिल कर लिये जाते हैं। उन्हें दुष्प्रचारित करके दुश्मन देश किसी भी देश में अस्थिरता और संघर्ष की स्थिति ला सकते हैं। ए आई के बहुतायत प्रयोग से एक तरफ जहाँ सकारत्मक बदलाव हुए हैं वहीं दूसरी तरफ वैश्विक सुरक्षा खतरे में पड़ गयी है।

निष्कर्ष:- ए आई का यदि केवल सकारात्मक प्रयोग व उपयोग किया जाये तो यह एक वरदान साबित होगी। नेचर पत्रिका में प्रकाशित एक रिर्पोट के अनुसार ए आई का उपयोग करके सतत विकास हासिल करने में 85 फीसदी मद्दगार हो सकती है वहाँ यह आशंका भी है कि इसके नकारात्मक उपयोग से सतत विकास के लक्ष्यों को 35 फीसदी तक रोका भी जा सकता है।

रवि प्रकाश गुप्ता
वरिष्ठ अभियंता (सी एम यू - 2)
वाप्कोस लिमिटेड

नैमिषारण्य की शाम का अहसास

नैमिषारण्य की पावन भूमि, जहाँ हवाओं में शंखों की गूँज और गोमती के तट पर शांति का वास है, वहाँ 78 वर्षीय रमन अपने घर की ढलती हुई परछाइयों को देख रहे थे। बाहर चक्रतीर्थ के दर्शन कर लौटते श्रद्धालुओं का उत्साह था, पर रमन के भीतर एक अजीब सा सन्नाटा पसरा था। उनके पास रहने के लिए एक सुंदर आशियाना था, साथ में उनकी जीवनसंगिनी मोनिका का हाथ था और बैंक में इतना धन कि अगली कई पीढ़ियां आराम से काट लें।

लेकिन, जैसे-जैसे सूरज क्षितिज के नीचे डूब रहा था, रमन के मन में स्मृतियों का एक तूफान उठ खड़ा हुआ। उन्हें अहसास हुआ कि जीवन भर 'कल' को सुरक्षित करने की होड़ में, उन्होंने अपना 'आज' कहीं बहुत पीछे छोड़ दिया है।

वह अपनी पेंशन की राशि से उन सुनहरे वर्षों को वापस नहीं खरीद सकते थे जो उन्होंने दफ्तर की फाइलों और अतिरिक्त बचत के चक्कर में गंवा दिए थे।

यह कहानी उन पाँच महत्वपूर्ण बिन्दु की है, जो रमन को नैमिषारण्य के इस शांत एकांत में अक्सर सोने नहीं देतीं—वे पछतावे, जो आज की पीढ़ी के लिए एक बड़ी सीख बन सकते हैं।

1. "एक और साल" की भारी कीमत

रमण ने चालीस साल एक ही फर्म में काम किया था। उन्हें अपना 62 साल वाला वह रूप याद आया, जब उनके पास रिटायर होने के लिए पर्याप्त बचत थी। लेकिन थोड़ी और ज्यादा पेंशन के लालच में उन्होंने 68 साल की उम्र तक काम किया। आज उन्हें अहसास हुआ कि उन्होंने अपनी ऊर्जा से भरे हुए बेहतरीन 6 साल एक ऐसे बैंक बैलेंस के लिए बेच दिए, जिसे खर्च करने का तरीका भी उन्हें नहीं पता था। उन्हें पछतावा था कि वे जल्दी रिटायर क्यों नहीं हुए, तब जब उनके घुटनों में दर्द नहीं था और उनमें दुनिया देखने का जोश बाकी था।

2. खुशियों को कल पर टालने की भूल

रमन ने अपनी बैंक की पासबुक देखी। पैसा तो बहुत था, लेकिन अब वह सिर्फ एक संख्या बनकर रह गया था। वे और उनकी पत्नी मोनिका हमेशा सोचते थे, "एक बार जिम्मेदारियां पूरी हो जाएं, फिर खुल कर जिएंगे।" अब मोनिका की बिगड़ती सेहत के कारण वे लंबी यात्राओं के बारे में सोच भी नहीं सकते थे। उन्हें दुख था कि उन्होंने अपनी बचत का एक हिस्सा तब क्यों नहीं खर्च किया जब वे दोनों जवान थे और उन पलों का आनंद ले सकते थे।

3. शरीर का खामोश विरोध

रमन पानी का गिलास लेने के लिए उठने लगे, तो उनके जोड़ों के दर्द ने उन्हें फिर से बैठने पर मजबूर कर दिया। उन्हें वे दिन याद आए जब उन्होंने काम के चक्कर में अपनी सेहत, कसरत और खान-पान को पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया था। उन्हें वे दशक याद आया जब उन्होंने जिम जाने के बजाय दफ्तर की मेज पर बैठे रहना चुना था और बाहर का खाना जरूरत से ज्यादा खाया था। यह उनका सेहत को लेकर सबसे बड़ा पछतावा था। उन्हें समझ आया कि आज उनके पास नैमिषारण्य की सुंदर परिक्रमा करने का समय तो है, लेकिन उनके पैर अब उनका साथ नहीं देते। यह उनका सेहत को लेकर सबसे बड़ा अफसोस था।

4. खाली हाथों का सन्नाटा

नैमिषारण्य के इस शांत घर में अक्सर सन्नाटा छाया रहता था। रमन को अहसास हुआ कि जीवन भर काम के पीछे भागते हुए उन्होंने कोई हॉबी या शौक विकसित ही नहीं किया। वे इतने सालों तक सिर्फ "मैनेजर रमन" बनकर रहे कि उन्हें पता ही नहीं चला कि "पेंटर रमन" या "लेखक रमन" कैसे बना जाता है। उन्होंने अपने पड़ोसी को लकड़ी का घर बनाते देखा और उन्हें जलन महसूस हुई। बिना किसी शौक के, रिटायरमेंट अब एक इनाम नहीं, बल्कि एक लंबा इंतजार लगने लगा था। उन्हें लगा कि एक शौक उनके बुढ़ापे को कहीं अधिक जीवंत बना सकता था।

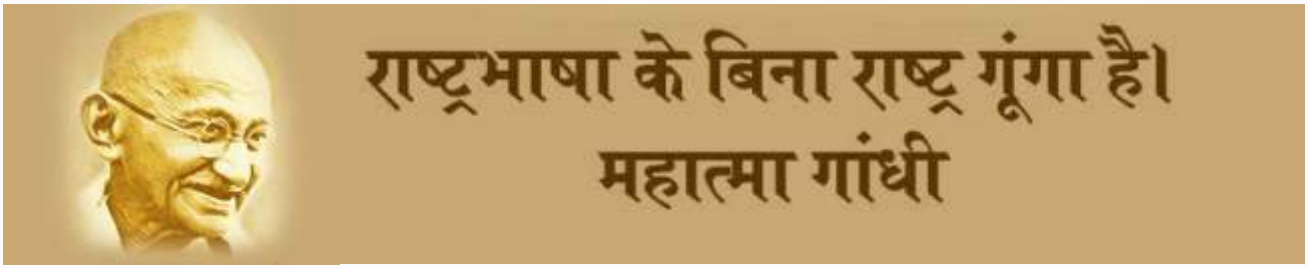

5. अधूरी यात्राएँ

बगल की मेज पर तीर्थस्थलों और विदेशों के नक्शे पड़े थे। अब उनके पास समय की कोई कमी नहीं थी और न ही धन की, लेकिन मोनिका और उनकी शारीरिक अक्षमता ने दुनिया देखने के उन सपनों पर विराम लगा दिया था। रमन को समझ आया कि सही समय पर यात्रा करना कितना जरूरी है, क्योंकि बुढ़ापे में सुविधाएं तो खरीदी जा सकती हैं, लेकिन उन जगहों को महसूस करने वाली हिम्मत नहीं।

यह कहानी हमें सिखाती है कि वक्त और सेहत का सही तालमेल ही असली रिटायरमेंट है।

मुख्य सीख

रमन की कहानी एक कड़वा सच बयां करती है: रिटायरमेंट में सबसे कीमती पूंजी पैसा नहीं, बल्कि सेहत और समय है।

"हम अपनी जवानी सेहत को बेचकर पैसा कमाने में लगा देते हैं, और बुढ़ापे में उसी पैसे को अपनी सेहत वापस पाने के लिए खर्च कर देते हैं।"

रमन और मोनिका की कहानी हमें सिखाती है कि नैमिषारण्य जैसी पवित्र और शांत जगह पर होने के बावजूद, असली शांति तभी मिलती है जब हम समय रहते अपनी खुशियों और सेहत में निवेश करते हैं। असल मे यही हैं हमारे जीवन जीने

चक्षु राजा
कनिष्ठ सहायक (वित्त)
वाप्कोस लिमिटेड

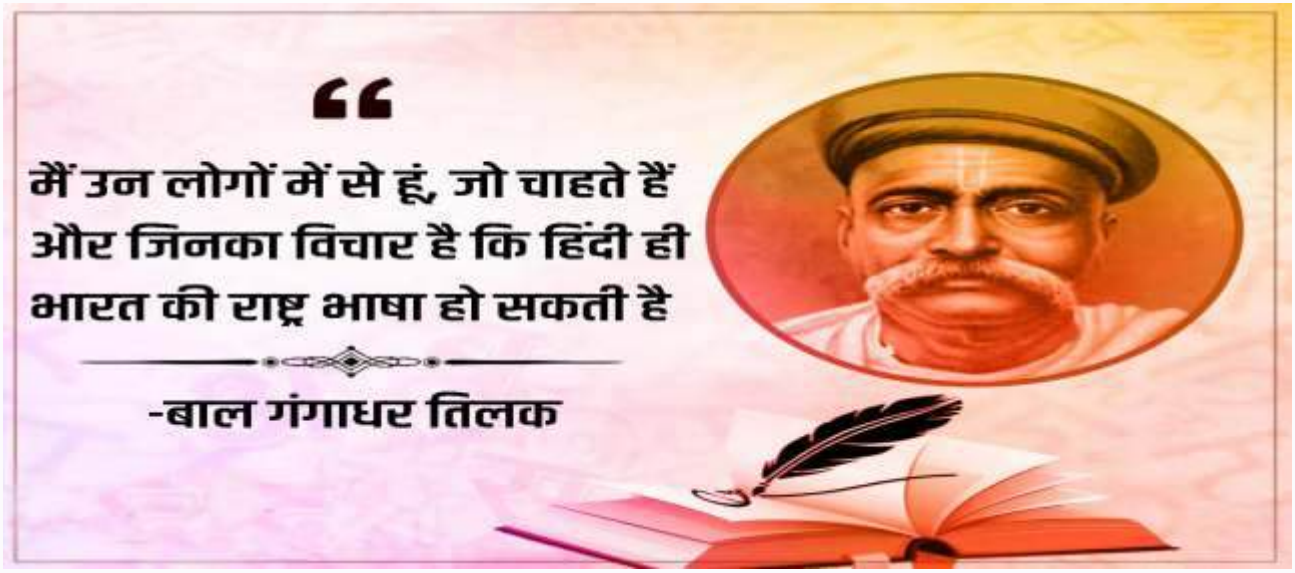

लटकाने वाला दीप (उत्तर मध्य भारत)

महाभारत के द्रोणापर्व में सैन्य शिविर में दीपों का बडा सुन्दर वर्णन मिलता है। "कौरव सेना मारी जा रही है फिर भी इसके सेनापति धैर्य नहीं त्यागते है। बचे हुए लोगों को वे संगठित करते हैं। दुर्योधन अपने व्यक्तियों को बचाने में व्यस्त हैं। वह अपने सैनिकों को हाथ में मशाल उठाने का आदेश देता है। क्षणभर में वे दीपक सेना को प्रकाशित कर देते हैं। हाथों में प्रकाश थामे वे सैनिक राज में बिजली से दैदिप्यमान बादलों की तरह सुशोभित होने लगते हैं।"

अनेक काव्यों और गद्य में माटीदीपों और रत्नदीपों की चर्चा मिलती है। कलहण की राजतरंगिणी में मणिदीप का वर्णन है। ये सम्भवतः मणियों से जडे हुए दीपक थे। कालिदास के मेघदूत में ऐसे मणिदीप का वर्णन है जो विना शिक्षा को प्रकाश बिखेरता है और सुगंधित गुलाल फेंकने से भी नहीं बुझता। रघुवंश में इन्दुमती के स्वयंवर के समय कालिदास ने राजकुमारी इन्दुमती की उपमा चलती हुई दीपशिखा से दी है जिससे पता लगता है कि उस समय दीपक को टार्च की तरह हाथ में लेकर चलने की प्रथा थी--

संचारिणी दीपारीखैव रात्रौ, यं यं व्यतीताय पतिंवरा सा।
नरेंद्र मार्गट्ट इव प्रवेदे विवर्णभाव स स भूमिपालः।।

स्वयंवर में वर चुनने की प्रक्रिया में इन्दुमती जयमाला लिए राजाओं की पंक्ति के बीच से गुजर रही है। चलती हुई दीपशिखा की भाँति इन्दुमती जिस-जिस राजा के पास से गुजर जाती थी वह राजा प्रकाश के आगे बढ़ जाने पर अंधेरी अट्टालिकाओं की तरह कांतिहीन हो जाता था।

पुरूषोत्तम मास में स्नानादि करके सूर्योदय के पूर्व दान किया गया दीपक पार्थिव देह को छोड़ कर जाती हुई आत्मा की मार्ग-दिशा निर्देश करता है तथा यमराज को भी प्रसन्न करता है। दक्षिण भारत में दीपदान की शोडष विधियों का वर्णन है। ईसवी 1225 में एक चौल ताम्रपत्र में मंदिर के नंदादीप को प्रज्वलित करने के लिये घी और गायों के दान और उनके पोषण के विशेष प्रबंध का वर्णन मिलता है। नदियों की प्रदक्षिणा के समय गोधूलिकाल में पत्तल के दोने में दीपदान करता भक्त एक अनुपम दृश्य की सृष्टि करता है।

दीपक की ज्योतिशिखा का आकार और रंग देख कर शुभ-अशुभ समय को परखा जाता हैं। पुरूषोत्तम महात्म्य में कहा गया हैं।

' रूक्षैर्लक्ष्मी विनाशःस्यात श्वैतेरन्नक्षयो भवेत्
अति रक्तेषु युध्दानि मृत्युःकृष्ण शिखीषु च।।

कोरी रूखी ज्योति लक्ष्मी का नाश, श्वेतज्योति अन्नक्षय, अति लाल ज्योति युद्ध और काली ज्योति मृत्यु की द्योतक है।

घर के आंगन में तुलसी के पौधे के पास रखे जाने वाले वृन्दावन दीप का महत्व सबसे अधिक माना जाता है। यह सान्ध्यलक्ष्मी के स्वागत को प्रगट करता है। भारत में प्रचलित विभिन्न दर्शनों में अलग प्रकार के दीपों का प्रयोग होता है। हठयोगी सीप का दीप जलाते हैं। शैव दीपों में नदी, नाग व कीर्तिमुख की रचना होती है, वैष्णव दीपों में शंख, चक्र, गदा, पद्म व वरूण की आकृतियाँ प्रयोग में लाई जाती है। गाणपत्य दीपों में गणपति, हाथी, मूषक, सर्प, शिवलिंग और रिद्धि-सिद्धि की आकृतियों को बनाया जाता है तो सौर दीप में सूर्य की आकृति बनाई जाती हैं। शक्तिदीप में कालभैरव, काली और भैरवी की आकृतियाँ मिलती हैं।

विश्व में शायद ही ऐसा कोई देश हो जहां दीपक को लेकर इतनी अधिक कल्पनाएँ, संवेदनाएँ, साहित्य और दैनिक परंपराएँ बुनी गई हो। सम्पूर्ण भारतीय सूर्य-अग्नि तथा उसके अंशस्वरूप दीपक के चारों ओर गुंफित हैं। जन्म होते ही और मृत्यु के बाद तक भारतीय मानव का जीवन दीपक के ही समांतर चलता है। हर छोटे बड़े प्रसंग में उसकी उपस्थिति हमारे सांस्कृतिक गौरव की वृद्धि करती है। दीपक प्रकाश, जीवन और ज्ञान का प्रतीक हैं। इसके बिना सब कुछ अंधकारमय हैं। दीपक तो मर्त्य में अमर्त्य हैं। "यो दीप ब्रम्हस्वरूपस्त्वम्" इसे हम ब्रम्हस्वरूप ही मानें।

वाप्कोस जयपुर कार्यालय में हिंदी पखवाड़े का आयोजन

हिंदी पखवाड़ा के अंतर्गत जयपुर कार्यालय में आयोजित हिंदी कार्यशाला एक ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायक पहल रही। इसका मुख्य उद्देश्य कर्मचारियों को राजभाषा हिंदी के प्रयोग के प्रति जागरूक करना तथा कार्यालयीन कार्यों में हिंदी के प्रभावी उपयोग को बढ़ावा देना था। कार्यशाला के दौरान प्रतिभागियों को हिंदी के व्याकरण, सरकारी पत्राचार, लेखन शैली एवं शब्द चयन संबंधी महत्वपूर्ण जानकारियाँ दी गईं, साथ ही व्यावहारिक अभ्यास के माध्यम से उनके भाषा कौशल को भी सुदृढ़ किया गया।

इस वर्ष कार्यशाला की विशेषता यह रही कि इसमें राजभाषा विभाग द्वारा विकसित दो नवीन तकनीकी साधनों – **"कंठस्थ 2.0"** और "हिंदी शब्द-सिंधु" का परिचय कराया गया। **"कंठस्थ 2.0"** एक स्मृति आधारित सॉफ़्टवेयर है, जो उपयोगकर्ताओं को हिंदी में दक्षता बढ़ाने हेतु प्रशिक्षण और अभ्यास प्रदान करता है, वहीं "हिंदी शब्द-सिंधु" एक समृद्ध डिजिटल शब्दकोश है, जिसमें हिंदी शब्दों के अर्थ, पर्यायवाची, विलोम, मुहावरे और उनका सही प्रयोग उपलब्ध है। इन दोनों संसाधनों ने प्रतिभागियों को हिंदी के आधुनिक, तकनीकी और प्रयोगात्मक पक्ष से परिचित कराया।

कार्यशाला का वातावरण उत्साहपूर्ण और संवादात्मक रहा, जिससे प्रतिभागियों को हिंदी के प्रति नई ऊर्जा, आत्मविश्वास और तकनीकी सशक्तिकरण प्राप्त हुआ।

हिंदी कार्यशाला के छायाचित्र :

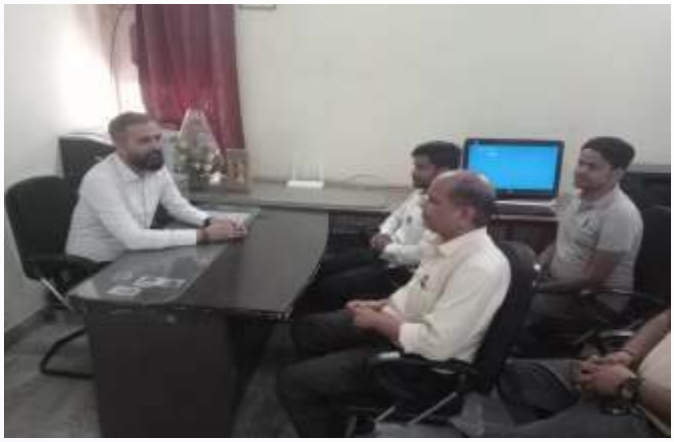

मिट्टी की पुकार

इस मिट्टी में इक जादू है,
जो दिल को सीधा छू लेता।
राहें चाहे अनजानी हों
वतन का नाम ही दिशा देता।

सरहद पर जो खड़े हुए हैं
उनकी साँसों में जज़्बा है।
धूप जले या रात गिरे,
पर कदमों में ही किस्सा है।

हम भी क्या कम भाग्यशाली,
जो इस धरती के बेटे हैं।
भाषाएँ भले हजारों हों,
पर धड़कन एक ही देते हैं।

चलो आज फिर प्रण लेते हैं–
हम मेहनत से देश सँवारेंगें;
जो हिस्सा अपना बन पड़े,
वो निष्ठा से निभाएँगे।

सेजल नेगी,
कक्षा-10वी
पुत्री प्रकाश चंद (ड्राफ्ट्समैन ग्रेड –III)
इंफ्रा -II पंचकूला

रूप का रखवाला घूँघट

— कनीज भट्टी

किसी परंपरा के बनने में सदियाँ लगती हैं, तो उसके टूटने में उससे भी अधिक समय और साहस की ज़रूरत पड़ती है। यह बात पर्दा-प्रथा पर भी लागू होती है। धीरे धीरे घूँघट को नकारा जा रहा है। नारी का कार्य क्षेत्र रसोईघर से ऑफ़िस तक प्रसारित हो जाने के कारण भी पर्दा उपेक्षित हुआ। कामकाजी महिलाओं के लिए अब यह अनुकूल नहीं रहा है। बतौर फैशन के नगरों में पर्दे का चलन बढ़ा भी है। युवतियाँ धूप एवं प्रदूषण से बचने के लिए दुपट्टे अथवा अन्य झीने वस्त्र से सारा मुखड़ा ढक कर चलती हैं, हाथों पर भी धूप के प्रभाव से बचने के लिए दस्ताने पहनती हैं। युवक भी इस दौड़ में पीछे नहीं हैं, वे पूरे चेहरे को नकाब से ढककर सड़कों पर वाहन चलाते नज़र आते हैं। दूसरी ओर अब शादियों में दुल्हनें भी बिना घूँघट के ही दिखाई देती हैं।

इस बात के नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों पहलू होते हैं। घूँघट को एक पक्ष से देखें तो कुछ फ़ायदे भी हैं, यथा-धूप और धूल से यह शरीर की रक्षा करता है। सूर्य पराबैंगनी किरणों के हानिकारक प्रभाव से हमें बचाता है। पर्दे के कारण चेहरे का रंग निखर जाता है। इससे बाल भी सुरक्षित रहते हैं और देर से श्वेत होते हैं। इसलिए कहावत प्रचलित है- 'धूप में ही बाल सफ़ेद नहीं किए हैं।' पर्दे की सुरक्षा में खूबसूरती बरकरार रहता है एवं लोगों की कुदृष्टि का शिकार भी सुंदरता नहीं हो पाती और फिर जिज्ञासा, दीदार का आनंद तो घूँघट से ही मिल सकता है। प्रायः मूर्तियाँ या अन्य नूतन वस्तुओं के अनावरण के लिए भव्य समारोहों का आयोजन किया जाता है। जब सब कुछ दृश्य है तो जिज्ञासा कहाँ रहेगी, इसीलिए तो मंदिरों के पट भी बंद रखे जाते हैं और समय-समय पर ही खोले जाते हैं। भगवान के शृंगार के जब अलग-अलग निश्चित वक़्त पर पट खुलते व बंद होते हैं, तब दर्शन का अलग ही माधुर्य अनुभूत होता है। चबूतरों पर अनावरित मूर्तियों के दर्शन प्रायः आध्यात्मिक आकर्षण का केंद्र नहीं बन पाते। दुल्हन जब घूँघट में होती हैं, तब उसे देखने के लिए सभी लालायित रहते हैं और फिर बेहद खूबसूरती क़यामत भी तो बन जाती है-

"ये हुस्न जो कातिल है, क़यामत है, कजा है।

घूँघट ही में अच्छा है कि दीदार न कर यूँ।''

पर्दे का दूसरा पक्ष तो ग़ौरतलब है ही। घूँघट में कैद आँखों को बाहर की दुनिया अस्पष्ट नज़र आती है और बड़ी-बड़ी दुर्घटनाएँ पेश आ जाती हैं। कभी-कभी तो दो बारातों के एक साथ होने पर दुल्हनें बदल जाने की ख़बरें भी अख़बार में मिल जाती हैं। घूँघट के कारण स्त्रियाँ कूप मंडूक होकर रह जाती हैं। बाहरी दुनिया से बेखबर केवल साँसभर लेना उनका जीवन रह जाता है। इसके अलावा पर्दे में घुटन भी होती है। गर्मी का प्रकोप भी सहना पड़ता है। वैसे घूँघट करने के अलग-अलग अंदाज़ हैं। कुछ स्त्रियाँ सिर्फ़ आँखों तक पर्दा करती हैं, तो कुछ नाक तक आँचल ढके रहती हैं, कुछ स्त्रियाँ ठोड़ी तक तो कुछ उससे नीचे लंबा घूँघट काढ़ती हैं तो कोई बगल से आधा मुख ढककर रखती हैं और फिर इसके अंदर से झाँकने के अंदाज़ के तो कहने की क्या...।

नग्नता सदैव कुरूप ही होती है और अर्धदर्शिता सौंदर्य का प्रतीक। चंद्रमा अपनी कलाओं के आधार पर ही सुंदरता का श्रेष्टतम उपमान बन गया है। प्रथमा से चौदहवीं के चाँद तक घूँघट का उतार-चढ़ाव चाँद की सुंदरता में चार चाँद लगा देता है। पूर्ण चंद्र के सौंदर्य का उपमा में उपयोग नहीं किया जाता।

"तेरे मुख पर तेज सत्य का, दाग नहीं तेरे चेहरे पर, तेरे आगे सूरज मद्धम, कैसे कह दूँ, माहज़बीं तू।''

वस्तुतः घूँघट स्त्रैण सौंदर्य का अनुवर्द्धक ही है- "आँखों तक आ के जब आँचल ठहरा, ये लगा झील पे बादल ठहरा।''

वैसे घूँघट का सदुपयोग व दुरुपयोग दोनों संभव हैं और यह कार्य पुरुष ही नहीं स्त्रियाँ भी अंजाम देती आई हैं। कोई-कोई स्त्री तो अंगुलियों से तिकोनी जगह बनाकर एक आँख से जब देखती है, तब घूँघट की अनिर्वच सुषमा का वर्णन करने में कवि-शायर भी पीछे नहीं रहे। घूँघट के अभिराम लावण्य का अपने ही ढंग से बखान किया है-

"सबब खुला है यही उनके मुँह छुपाने का, चुरा न ले कोई अंदाज़ मुस्कुराने का।''

घूँघट एक तरफ़ मान मर्यादा और लज्जा का प्रतीक भी है, तो दूसरी तरफ़ कई प्रकार की दुर्घटनाओं का जनक भी। अतः अनावश्यक पर्दाप्रथा से मुक्त होकर ऐसी दुर्घटनाओं में कमी की जा सकती है। किंतु हाँ, समय के अनुकूल परिवर्तन स्वीकारना ही मानव कल्याण के लिए उचित है। जहाँ ज़रूरत हो पर्दा करने में कोई नुकसान नहीं है, लेकिन प्रथा मात्र को हर वक़्त ढोते रहना असंगत ही कहा जाएगा। अंततः यही कहा जा सकता है कि-

'निगाहे-नाज़ का सिंगार भी यही घूँघट, बने जो बोझ तो आजार भी यही घूँघट।

यही है लाज का, ग़ैरत का आस्ताना,

'यकीन', फरेबे-हुस्न का बाज़ार भी यही घूँघट।"

साहित्य में वैज्ञानिक एवं सामाजिक चेतना

— शैलेन्द्र चौहान

भारतीय मानस तपस्या, हवन, पूजा आदि से ऐसी दैवी शक्तियों तथा असाधारण सामर्थ्य की अवधारणा करता रहा है जो आज वैज्ञानिक अनुसंधानों के रूप में हमारे समक्ष भौतिक रूप में विद्यमान हैं। महाभारत, रामायण आदि प्राचीन ग्रंथों में युद्ध में प्रयुक्त विशेष अस्त्र शस्त्र जो पारंपारिक अस्त्रों से भिन्न दैवी वरदान के रूप में प्राप्त होते थे उनकी तुलना आज के अत्याधुनिक अस्त्रों से की जा सकती है।

इसी तरह रामायण में प्रयुक्त पुष्पक विमान किसी छोटे हेलीकॉप्टर या हावर क्राफ्ट की तरह लगता है। आकाशवाणी का भी कई जगह जिक्र आता है कुछ इस तरह जैसे पास ही कहीं से कोई पब्लिक एड्रेस सिस्टम की तरह उद्घोषणा कर रहा हो। औषधि विज्ञान की तो ऐसी चमत्कारिक स्थितियाँ हैं कि जीता हुआ व्यक्ति लोप हो जाए, मरा हुआ पुन: जिन्दा हो जाए, एक शरीर के दो टुकड़े और पुन: दो के एक हो जाएं। कुल मिलाकर मन्तव्य यह कि विज्ञान, जो कि यथार्थ और सुविचारित स्वाध्याय तथा मेधा द्वारा नये नये आविष्कार करता है वह भारतीय प्राचीन ग्रंथों में शक्ति और वरदान की तरह प्रयुक्त होते हैं।

मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि मनुष्य ने वैज्ञानिक शक्तियों से काफी पहले ही साक्षात्कार कर लिया था। परंतु उस समय की सामाजिक व्यवस्था ऐसी थी कि वैज्ञानिक अनुसंधान निहायत व्यक्तिगत संपत्ति की तरह उपयोग में लिये जाते थे और सारे चमत्कार राजाओं और राजकुमारों के पास ही रहते थे। भारतीय प्राचीन साहित्य में इन चमत्कारों और शक्तियों का भरपूर प्रयोग हुआ है परंतु चूँकि साधारण जन के पास उन शक्तियों के बारे में जानने का कोई जरिया नहीं था अत: उसने इन्हें चमत्कार के रूप में ही स्वीकारा।

आज विज्ञान हमारी जीवन शैली का एक अभिन्न अंग है। आज बहुत कुछ समाज के सामने हैं। यद्यपि आज भी सत्ताधारी वर्ग के स्वार्थ हैं। सम्पन्नता की जीत है और सामर्थ्य का बोलबाला है परंतु फिर भी विज्ञान हमारे दैनिक जीवन में एक महात्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने लगा है। यातायात के आधुनिक साधन, प्रौद्योगिकी का विकास, उद्योग धंधे, उत्पादन, बिजली और प्रचार माध्यम, रसायन एवं औषधि विज्ञान हमारे दैनंदिन जीवन का अंग बन चुके हैं। जहिर है समाज पर विज्ञान की इतनी बड़ी पकड़ को साहित्यकार भी नजर अंदाज नहीं कर सकता।

प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से हमारी चेतना को वैज्ञानिक अनुसंधान प्रभावित कर रहे हैं। अत: साहित्य सृजन को भी वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित कर रहे हैं। हाँ उनका सीधा-सीधा उपयोग साहित्य में उस तरह स्थूल रूप में संभव नहीं है कि हमें लगे कि यह साहित्य वैज्ञानिक युग का प्रतिबिम्ब है अलबत्ता वैज्ञानिक साहित्य अब प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

विज्ञान और साहित्य के अंर्तसंबंधों की बात जब की जाती है तब यह ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए कि विज्ञान, विज्ञान है कला, कला। यहाँ बात मैं अंर्तसंबंधों की कर रहा हूँ स्थूल संबंधों की नहीं। साहित्य पर विज्ञान का प्रभाव रूपांतरित होकर पड़ता है सीधा नहीं। हाँ कहीं कभी यदि भावभूमि की जगह दृश्य चित्रण होता है तब अवश्य वैज्ञानिक उपकरण या ये दृश्य साहित्य में अंकित होते हैं जिन्हें साहित्यकार देखता सुनता है।

हिन्दी कविता में साठ के दशक में प्रयोगवाद के तहत वैज्ञानिक चिंतन तथा चित्रण की अनेकों कविताएं लिखी गई परंतु विज्ञान की मूलभावना को पकड़ने वाले कवि बहुत कम थे। गजानन माधव मुक्तिबोध उन गिने चुने कवियों में थे जिन्होंने विज्ञान और फैंटेसी के आधुनिक तथा कलात्मक बिंब और भाव कविता में लिए। उनकी एक कविता 'मुझे मालूम नहीं' में मनुष्य की उस असहायता का चित्रण है जिसमें वह यथास्थिति तोड़ नहीं पाता। वह दूसरों के बने नियमों तथा संकेतों से चलता है। उसका स्वयं का सोच दूसरों के सोच पर आधारित होता है। दूसरों का सोच सत्ता के आसपास का चरित्र होता है। सत्ता अपने को स्थापित करने के लिए मनुष्य के सोच की स्थिरीकरण करती है। परन्तु मनुष्य की चेतना कभी कभी चिंगारी की भांति इस बात का अहसास कराती है कि वह जो सामने का सत्य है उससे आगे भी कुछ है। संवेदनहीन होते व्यक्ति की संवेदना को वह चिंगारी पल भर के लिए जागृत करती है।

भागो लपको, पीटो-पीटो कि पियो दुख का विष
उस मनुष्य-आमिष-आशी की जिह्वा काटो
पियो कष्ट, खाओ आपत्ति-धतुरा, भागो
विश्व तराशो, देखो तो उस दिशा
बीच सड़क मे बड़ा खुला है
एक अंधेरा छेद

घूसो अंधेरे जल में
-गन्दे जल की गैल
स्याह भूत से बनो, सनो तुम
मैन-होल से मनों निकालो मैल

एक अंधेरा गोल-गोल
वह निचला-निचला भेद,
जिसके गहरे-गहरे तल में
गहरा गन्दा कीच
उसमें फँसो मनुष्य

मुक्तिबोध की कविता 'भविष्यधारा' की इन पंक्तियों में एक बड़े सीवर का चित्र है। मनुष्यता, मानवीय गुण, परोपकार की भावना, सामाजिक सरोकार लगता है जैसे एक बड़ी सीवर लाइन की तलहटी में समा गये हैं। मूल्यहीन समाज, चारों तरफ फैला गहन अंधकार, अनाचार यह सब कैसे साफ होगा इसके लिए ' मैन होल' से सीवर लाइन में घुसना होगा, भूत की तरह बनना और सनना होगा कीचड़ में तभी मनों मैल निकल पायेगा।

समाज में व्याप्त बुराइयों, असंगतियों, विसंगतियों को आसानी से तो कदापि नहीं मिटाया जा सकता। उसके लिए तो बहुत बड़े प्रयत्न की आवश्यकता है, लगन की आवश्यकता है, इच्छाशक्ति की आवश्यकता है। महज रोते रहने से ही तो समाज में व्याप्त असमानता और असहजता दूर नहीं हो सकती। उसके लिए पौरूष, सामर्थ्य और मनोबल वांछित है तभी मैल निकाला जा सकता है। यह कार्य इतना आसान नहीं है इसमें बहुत लोगों को लगना होगा। यह वैज्ञानिक सोच की परिणति है अन्यथा बड़े इत्मीनान से कोई गीत गा सकता है कि सुबह जरूर आयेगी सुबह का इन्तजार कर। यानि सब कुछ भाग्य पर छोड़ दो। कभी न कभी बुराइयाँ भी दूर हो ही जायेंगी चाहे तब तक मनुष्यता ही विनाश के कगार पर पहँुच जाये।

निश्चित रूप से वैज्ञानिक सोच और उसकी साहित्यक परिणति ही साहित्य की वह लोकमंगला धारा है जिससे मनुष्य विकासकामी और प्रगतिकामी बनता है अन्यथा अर्नगल, दिशाहीन और अस्पष्ट साहित्य यथार्थ से कोसों दूर मानव को कूप मण्डूक बनने में ही मदद करता है। यह अवैज्ञानिक साहित्य होता है जो कुण्ठाओं, विकृतियों और दृष्टिहीनता से भरा होता है। वैज्ञानिक सोच न केवल तर्कों पर आधारित होता है बल्कि यथार्थ, भौतिक प्रयोग तथा गणितीय और सांख्यकीय निष्कर्षों पर आधारित होता है। साहित्य के संदर्भ में ये निष्कर्ष सीधे गणितीय तथ्यों पर आधारित नहीं माने जा सकते। मनुष्य की अपनी एक जैविक पहचान है वैचारिक अस्मिता है। और अपने सहधर्मी, सहयोगी तथा सहकर्मी के ऊपर आश्रित होने का, विश्वास करने का, उससे स्नेह करने का भावनात्मक, और वैचारिक आधार भी है। अत: वैज्ञानिक साहित्य की अवधारणा विज्ञान की शब्दावली, नियम या तथ्य मानने और उन्हें साहित्य में उतारने की कतई नहीं है यह तो मात्र एक विषय है। इससे कहीं आगे वैज्ञानिक साहित्य विज्ञान सम्मत यथार्थ और आदर्श तथा मानवीय संबंधों की भावभूमि पर ही रचा जा सकता है। मानवीय गरिमा, मानवीय चरित्र का उदात्तीकरण और लोकमंगल मोटे मोटे प्रत्यय है जो वैज्ञानिक साहित्य में समाविष्ट होते हैं। इन्हें जितनी अधिक कलात्मकता और अनुभूति की प्रगाढ़ता से साहित्य में उतारा जा सकता है वही साहित्यकार की सफलता का मानदण्ड होता हे।

वैज्ञानिक साहित्य का एक स्थूल पक्ष भी है यथार्थ, और उसका वैचारिक चित्रण जैसे कि रिपोर्ताज, डायरी, लेख, राजनीतिक आलेख इत्यादि। हिन्दी के आधुनिक साहित्य में यह सब विविध आयम आज परिलक्षित होते हैं। स्व. रघुवीर सहाय एक अच्छे कवि रचनाकार तो थे ही वह एक अच्छे सम्पादक तथा अखबारनवीस भी थे। उनके रिपोर्ताज शैली में कुछ लघु निबंध संकलित हैं 'भँवर, लहरें और तरंग' नाम से उसका अन्तिम निबंध है, 'रोटी का हक'। वैज्ञानिक विचार मंथन की एक साहित्यिक प्रस्तुति यह भी है -

"पिछले कुछ वर्षों में कुछ एक झूठ चारों तरफ फैले हैं उनमें से एक हैं कि जनता को सबसे पहले रोटी चाहिए। यह कथन झूठ इसलिए है कि यह रोटी को पहले रखकर बाकी चीजों को बाद में रखता है। बताता नहीं कि बाकी चीजें क्या है। भ्रम पैदा करता है कि जब पहले रोटी आ जायेगी तो बाकी चीजें भी अपने आप पैदा हो जायेंगी। माने रोटी और बाकी चीजें अलग-अलग दो बातें हैं और कुल मिलाकर यह सिद्धांत फैलता है कि रोटी पैदा करने के साधन पर जनता का अधिकार आवश्यक नहीं। उसे रोटी दे दी जाती है यही लोकतंत्र है।

यह लोकतंत्र नहीं है रोटी और रोटी पैदा करने का अधिकार दो अलग अलग चीजें नहीं है। रोटी पैदा करने के साधनों पर अधिकार जीवन में पूरा हिस्सा लेने का राजनैतिक अधिकार है। और लोकतंत्र उस अधिकार पर अधिकार रखने की आजादी का नाम है। रोटी देने की धारणा सामंती और लोकतंत्र विरोधी धारणा है क्योंकि वह साधनों पर अधिकार मुठ्ठी भर लोगों का ही रखना चाहती है।"

इस निबंध की भाषा थोड़ी अटपटी है परंतु इसके तर्क और मंतव्य निश्चित रूप से विज्ञान सम्मत है। विश्लेषण और उदाहरण दोनों यहाँ हैं अत: यह विज्ञान का ही साहित्य पर प्रभाव प्रमाणित करता है। तमाम विश्लेषण और सोच विचार के बाद रचनाकार का सोच और उसके मनोभाव एक ऐसी आधारभूमि को तलाश लेते हैं जो उसे सही और श्रेष्ठ प्रतीत होती है। यहाँ रचनाकार एक निस्संग और निष्प्राण दृष्टा की तरह चुप नहीं बैठा रहता बल्कि वह अपनी भूमिका तय कर लेता है और वह पक्षधरता के साथ सृजन करता है। विचार और वैचारिक पक्षधरता, विश्लेषण और निष्कर्ष की वैज्ञानिक विधि का अनुसरण करते हैं यथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता 'धूल' का उदाहरण लें :-

तुम धूल हो पैरों से रौंदी हुई धुल, बेचैन हवा के साथ उठो
आँधी बन उनकी आँखों में पड़ो, जिनके पैरों के नीचे हो

यह पक्षधरता दलित और शोषित के प्रति ही क्यूं है? क्योंकि समाज में मनुष्य और मनुष्य के बीच एक बहुत बड़ी दूरी है। एक शोषित है दूसरा शोषक। वैज्ञानिक साहित्य मानव की बराबरी की वकालत करता है। वह आँख बन्द करके रूढ़ियों का अनुसरण नहीं करने देता वह चेतना को जागृत करता है। और कवि धूल को आँधी के साथ उड़ने की स्वाभाविक क्रिया और उसकी परिणति से आगाह कराता है। पक्षधरता के बाद प्रतिबद्धता भी वैज्ञानिक विचारधारा की अनुगामिनी हुई है। यह प्रतिबद्धता किसी द्रोणाचार्य की कौरवों के साथ प्रतिबद्धता नहीं है। न ही सत्ता की इजोरदार, अपराधी तत्वों और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और खुले बाजार के लिए प्रतिबद्धता है क्योंकि विनाश और विकास दोनों ही विज्ञान ने आसान बनाए हैं। आज भारतीय राजनीतिक सत्ता विनाश की प्रतिबद्धता से संचालित है परंतु एक रचनाकार की प्रतिबद्धता मानव के अस्तित्व, बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय तथा सृष्टि के कल्याण की प्रतिबद्धता है। मूल्यहीनता, दृष्टिहीनता और स्वार्थलिप्सा के प्रति नहीं। जनकवि 'शील' की प्रार्थना के साथ कि ' हे दिशा सर्वहारा विवेक' वैज्ञानिक चिंतन और साहित्यिक सरोकारों की कुंद पड़ी चेतना को झंकृत करने की आवश्यकता है :-

पद-दलित देश कुचला जन-बल, दल-बदल शासक, पतन प्रबल
चर्चित कानूनी सन्निपात, बढ़ रही भेड़ियों की जमत
सोचो; यह किसकी राजनीति
यह लूट, अपहरण, बलात्कार
है किस दर्शन के चमत्कार?
किन मानव मूल्यों का प्रतिफल
दे रहे इज़ारेदार सबक
महंगाई दिन दिन आवश्यक
तब लोग किस तरह पेट भरें
किस तरह जियें किस तरह मरें?

वंदेमातरम् की रचना

— राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह

वंदे मातरम् की रचना कब, कैसे और क्यों?

बंगाल में बंगला के लेखक, कवि और उपन्यासकार तो बहुत से हुए हैं, पर बंकिम बाबू की अपनी एक शैली थी और उन्होंने 'वंदे मातरम्' गीत लिखकर अपने को अमर कर दिया। मुझे याद आते हैं वे दिन जब एक तरफ यह गीत लोगों में स्वतंत्रता-संग्राम के लिए जोश पैदा करता था वहीं दूसरी ओर देश की परतंत्रता पर उन्हें दुखी करता था।

सन 1938 में हरीपुर (वारदोली ताल्लुका) में कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ था, वैसा कोई और नहीं हुआ। सारा प्रबंध सरदार पटेल का था। लाखों की भीड़ थी पर शांति इतनी कि यदि एक कलम हाथ से गिर जाती तो उसकी आवाज कानों में आ पड़ती, गरज यह कि ऐसा आदेश- पालन किसी कांग्रेस में देखने को नहीं मिला। मैं बिहार के डेलिगेटों के बीच बैठा हुआ था, पर सभी डेलिगेट चुप शांत भाव से गाँधीजी और उनके साथ सुभाष बाबू के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। सहसा गाँधीजी लाठी लिये हुए और सुभाष बाबू गाँधी टोपी पहने हुए आकर मंच पर खड़े हो गये। लोगों ने तालियाँ पीटीं और विद्यापीठ की कुछ लड़कियों ने "वंदे मातरम्" गाना आरंभ किया। देश-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत लाखों की भीड़ रो पड़ी - ऐसा आकर्षण था उस गीत में।

नौहाटी का भक्तिमय वातावरण

बंकिम बाबू का जन्म कलकत्ते से कुछ मील की दूरी पर स्थित नौहाटी नामक नगर में सन 1836 में हुआ था। वे एक संपन्न जमींदार परिवार में जन्मे थे। उनका पुश्तैनी मकान किसी राजमहल से कम न था। उनके पिता श्री यादव चंद्र चटर्जी एक बड़े जाने-माने व्यक्ति थे, साहित्यिक एवं राधा-कृष्ण के परम भक्त भी। उन्होंने अपने पुराने घर से प्राय: डेढ़ किलोमीटर दूर जाकर देवल पाड़ा मुहल्ले में एक विशाल दो मंजिले भवन का निर्माण किया, जिसके मध्य में श्री राधा-कृष्ण का मंदिर बनवाया। जहाँ पूजा-अर्चना तो एक पंडित करता था पर राधाजी की सुंदर अष्टधातु की बनी हुई प्रतिमा की सेवा के लिए एक अलग परिचारिका रखी गयी थी, जो राधाजी की सेवा अर्थात श्रृंगार, पूजा आदि करती। उन्हें प्रतिदिन नयी पीले रंग की साड़ी पहनायी जाती, तभी मंदिर का पट खुलता और सैकड़ों दर्शनार्थी, जो खड़े होकर पट खुलने की प्रतीक्षा करते रहते थे, साष्टांग प्रणाम करते और पुजारी से प्रसाद लेते। मकान के विशाल हाते में रथ-शोभा यात्रा भी सावन के महीने में निकला करती थी (वैसे ही - जैसे श्री जगन्नाथ पुरी में) रथ पर कृष्ण-बलराम के विग्रह होते। इस अवसर पर हाते में एक छोटा-मोटा मेला भी लगता, जिसमें हर चीज की छोटी-छोटी दुकानें होतीं तथा संगीत का आयोजन भी होता।

बंकिम बाबू का एक कमरा मंदिर के पास ही था, जिसमें बैठकर उन्होंने अपने अनेक उपन्यासों के अधिकांश हिस्से लिखे थे। इनके ये उपन्यास बंगला साहित्य की निधि है : 1. दुर्गेश नंदिनी 2. कपाल-कुंडला 3.मृणालिनी 4.विष-वृक्ष 5. इंदिरा 6. कृष्णकांतेर वील 7. चंद्रशेखर 8. आनंद मठ 9. देवी चौधरानी तथा 10. सीताराम इत्यादि।

इन उपन्यासों में बंकिम बाबू का सबसे पहला उपन्यास 'दुर्गेश नंदिनी' है, जिसमें एक वीर क्षत्राणी की कथा है। ये सारे उपन्यास उन्होंने अपने लिखने के कमरे और अर्जुना झील के तट पर बैठकर लिखे थे। अर्जुना झील करीब छह किलोमीटर में फैली हुई है और चारों ओर तरह-तरह के घने वृक्ष तथा धान के खेत इसके सौंदर्य पर चार चांद लगाते हैं। मैं इसे देखकर चकित रह गया। बंकिम बाबू के 'वंदे मातरम्' में बंगाल का जो रूप चित्रित है, वह हू-ब-हू इस झील में मानो अंकित हो। इसे देखते ही स्मरण हो जाता है --

सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम
शस्य श्यामलाम् मातरम् । वंदे मातरम्

बंकिम बाबू के उपन्यासों में 'आनंद मठ' सबसे विख्यात और सर्वोपरि है। 'आनंद मठ' का नाम और विषय दोनों ही त्रिकोण पर आधारित है। इस कथा का मूल बंगाल का महा दुर्भिक्ष है, जो सर जॉन शोर की रिपोर्ट के मुताबिक सन 1769-1770 में हुआ था। वह एक ऐसा वक्त था, जब सोने से ज्यादा मूल्यवान अन्न था। सोना देने पर भी अन्न प्राप्त होनेवाला न था। माँ की गोद में बच्चे दूध के लिए तड़प-तड़पकर मर जाते थे और उनके सामने ही लाश को चील, सियार, कौआ नोच-नोचकर खाते थे। एक तरफ प्रकृति का तांडव-नृत्य, दूसरी तरफ नवाबों का शासन, जहां प्रशासक थे मुर्शिदाबाद के नवाब मीरजाफर। मगर लगान की वसूली शाह आलम से दीवानी प्राप्त कर कंपनी ने अपने हाथों में ली थी। दोनों शासकों के बीच रिआया की स्थिति काफी दयनीय हो गयी। कोई सहायता तो थी नहीं, यदि कुछ था तो सिर्फ शासन का जुल्म। इस जुल्म के विरोध में प्रतिशोध की भावना से उठोरित अपने मठाधीशों के आदेश से संन्यासियों ने विद्रोह किया।

पलासी की लड़ाई के बाद कंपनी बंगाल और उड़ीसा की दीवानी (बादशाह शाह आलम से उसने दीवानी हासिल की थी) हासिल कर अपनी सत्ता स्थापित करने में लगी हुई थी। परिणाम यह हुआ कि अर्थ की व्यवस्था तो कंपनी के हाथों में थी और शासन नवाब के हाथों में।

बिहारी का एक दोहा है --

"दुसह दुराज प्रजानिको, क्यों न बढ़े दु:ख द्वंद अधिक अंधेरों जग करत, मिली मावस रविचंद।।" अर्थात, जब दुअमली होती है -- प्रजा पर दुहरे शासकों का शासन होता है -- तो प्रजा के दु:ख बेतरह बढ़ जाते हैं, जैसे अमावस की रात सूर्य और चंद्र के एक साथ मिल जाने से सर्वाधिक गहरी काली हो जाती है।

यही हाल बंगाल का हो रहा था। एक ओर कंपनी की सरकार वित्त के मामलों में अपना अधिकार मजबूत करने में लगी हुई थी, जिसके लिए उसने दीवानी हासिल की थी। दूसरी ओर नवाबों के शासन से देश की जनता कुचल रही थी। यही कारण था संन्यासियों को हिंदुओं के रक्षार्थ विद्रोह करना पड़ा। उनका दल गाँव-गाँव जा-जाकर हिंदुओं को प्रोत्साहित करने के लिए यह गीत गाता हुआ विचरा करता था --

वंदे मातरम् वंदे मातरम्
सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम्
शस्य श्यामलाम् मातरम् ।। वंदे मातरम्
शुभ्र ज्योत्सना पुलकित यामिनीम्।।
सुहासिनी समधुर भाषिणी।
सुखदां वरदां मातरम् ।।
वंदे मातरम्।
त्रिशंत्कोटि कंठ कल-कल निनाद कराले,
द्वित्रिशत्कोटि भुजेधृति स्वर कर वाले।
के बेले मा तुमी अबले,
बहुबल धारणीम् नमामि तारणीम्।
रिपुदल वारणीम् मातरम् ।। वंदे मातरम्

'आनंदमठ' की लोकप्रियता

इस तरह से बंकिम बाबू ने त्रिकोणात्मक कथा को 'आनंद मठ' में बड़ी कुशलता से उस समय की स्थिति का सजीव चित्रण करते हुए दिखलाया है। कहना न होगा कि यह पुस्तक बंगाल में अतिशय लोकप्रिय हुई और घर-घर में 'वंदे मातरम्' गीत गाया जाने लगा। हिंदुओं के लिए इस गीत ने संजीवनी-बूटी-सा काम किया। प्रस्तुत है इस लोकप्रियता का एक प्रमाण। सन 1901 में जब गुरूदेव रवींद्रनाथ टैगोर अपनी पुत्री माधवीलता के विवाह के संबंध में मेरे शहर मुजफ्फरपुर में पधारे तो यहां के बंगाली समाज ने उन्हें प्रथम मान-पत्र (नोबेल पुरस्कार प्राप्ति के कई साल पहले) प्रदान किया था। सभा में खासी भीड़ हुई और लोगों ने बड़े चाव से गुरूदेव के भाषण को सुना और अंत में उनसे अनुरोध किया कि वे अपने मुख से एक गीत गाकर सुनाएं। इस अनुरोध पर उन्होंने जो गीत गाया, वह 'वंदे मातरम्' ही था।

अंगरेजी का प्रसार-प्रचार

पलासी की लड़ाई के बाद बंगाल में अंगरेजों की सत्ता धीरे-धीरे मजबूत होने लगी उन्हीं दिनों राजा राम मोहन राय के अथक प्रयास से ब्रिटिश पार्लियामेंट ने ईस्ट इंडिया कंपनी को यह आदेश दिया कि वह भारतवर्ष में अंगरेजी शिक्षा का आरंभ करे और इस आदेशानुसार लार्ड बेंटिक ने कई संस्थाएं खुलवायीं। इनमें सबसे प्रथम था कलकत्ता का प्रेसिडेंसी कॉलेज जो सन 1820 में स्थापित हुआ। अंगरेजी शिक्षा के तहत प्रेसिडेंसी कॉलेज भारत का ही नहीं बल्कि एशिया का सबसे पहला कॉलेज था। प्रेसिडेंसी कॉलेज की स्थापना के बाद कलकत्ता विश्वविद्यालय की सृष्टि हुई, जिसका विस्तार बंगाल से लेकर पंजाब तक था और इस देश के दक्षिण हिस्से को छोड़कर बाकी सभी हिस्सों में जो कॉलेज स्थापित हुए, उन सबकी परीक्षाएँ कलकत्ता विश्वविद्यालय ही लिया करता था।

किसे कलाम न होगा यहाँ यह कहना कि नौहाटी नगर गंगा के किनारे पड़ता है। गंगा के उस पार चेनसुरा नगर है। किसी समय यह फ्रांस के अधिकार में था। क्लाइव और फ्रांसिसी जनरल डुप्ले के बीच लड़ाई चली थी और अंत में दोनों के बीच इस शर्त पर सुलह हुई कि बंगाल में चंदरनगर और चेनसुरा तथा मद्रास में पांडिचेरी फ्रांस के अधिकारगत होंगे। तदनुसार ये फ्रांस के अधिकार में आये और यहां फ्रेंच की पढ़ाई शुरू हुई।

चेनसुरा में-

चेनसुरा में बंकिम बाबू के पिता के मित्र बंगाल के प्रसिद्ध उपन्यासकार भूदेव मुखोपाध्याय रहा करते थे। इन दोनों के बीच बड़ी मैत्री थी। आना-जाना बना रहता था। इसको आसान करने के लिए बंकिम बाबू के पिता ने गंगा और अर्जुना झील के बीच (दूरी बहुत कम थी)। एक नहर बनवायी और एक नौका अर्जुना में रखी, जिस पर चढ़कर वे चेनसुरा जाते और अर्जुना में यदाकदा सैर किया करते थे। गंगा से लगे रहने के कारण अर्जुना झील का पानी कम नहीं होता। यह नहर शायद अब भी वर्तमान है। बंकिम बाबू के बाद कोई पुत्र नहीं था और उनकी माली हालत भी खराब हो चली तो उनके पिता का बनवाया हुआ विशाल महल धीरे-धीरे खंडहर हो चला। उनके तीन नाती थे, उनके पास उतना पैसा नहीं कि मरम्मत करा सकें। परिणाम यह हुआ कि बंकिम बाबू के देहावसान के बाद ये महल खंडहर का रूप धारण करने लगे। उनके नाती कलकत्ता

खंडहर निवास - अब संग्रहालय-

बंगाल सरकार ने मकान के कुछ हिस्से जो अभी भी अच्छी अवस्था में हैं तथा बंकिम बाबू के लिखने-पढ़ने का कमरा तथा शिव और राधा वल्लभ के मंदिर अपने हाथ में कर लिये हैं और इसे एक संग्रहालय का रूप दे डाला है। दर्शक इन्हें जिले के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट से परमिट लेकर ही देखने जा सकते हैं। वर्तमान समय में नौहाटी और शहरों की तरह एक उन्नत शहर बन गया है और वहां का 'टेनिस बॉल साईज' का मशहूर रसगुल्ला आज भी बनता है। यहां का प्रसिद्ध महल्ला भांटपाड़ा आज भी संस्कृत विद्या का केंद्र बना हुआ है। भांटपाड़ा, जो शहर से प्राय: आधा किलोमीटर की दूरी पर है, के ब्राह्मणों के परिवार आज भी परंपरागत जीवन-शैली अपनाये हुए हैं। पर बंकिम बाबू के कारण जो गरिमा उसे प्राप्त थी, वह अब कहानी बनकर रह गयी है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लिखा था --

खंडहर निवास - अब संग्रहालय-

बंगाल सरकार ने मकान के कुछ हिस्से जो अभी भी अच्छी अवस्था में हैं तथा बंकिम बाबू के लिखने-पढ़ने का कमरा तथा शिव और राधा वल्लभ के मंदिर अपने हाथ में कर लिये हैं और इसे एक संग्रहालय का रूप दे डाला है। दर्शक इन्हें जिले के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट से परमिट लेकर ही देखने जा सकते हैं। वर्तमान समय में नौहाटी और शहरों की तरह एक उन्नत शहर बन गया है और वहां का 'टेनिस बॉल साईज' का मशहूर रसगुल्ला आज भी बनता है। यहां का प्रसिद्ध महल्ला भांटपाड़ा आज भी संस्कृत विद्या का केंद्र बना हुआ है। भांटपाड़ा, जो शहर से प्राय: आधा किलोमीटर की दूरी पर है, के ब्राह्मणों के परिवार आज भी परंपरागत जीवन-शैली अपनाये हुए हैं। पर बंकिम बाबू के कारण जो गरिमा उसे प्राप्त थी, वह अब कहानी बनकर रह गयी है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लिखा था --

कहेंगे सबेई नैंन भरि-भरि पाछे
प्यारे हरिश्चन्द्र की कहानी रहि जायेगी

महारानी अहिल्याबाई होलकर

महारानी अहिल्याबाई होलकर का जन्म 31 मई 1725 को चोंडी गाँव (चांदवड़), इंदौर राज्य, मराठा संघ, वर्तमान अहमदनगर (महाराष्ट्र) में हुआ था। अहिल्याबाई के पिता मानकोजी शिंदे एक मामूली किंतु संस्कार वाले आदमी थे। उस समय महिलाएँ स्कूल नहीं जाती थीं, लेकिन अहिल्याबाई के पिता ने उन्हें लिखने-पढ़ने लायक बनाया।

ऐसा कहा जाता है कि वे तब प्रमुखता से उभरीं जब मराठा पेशवा बाजीराव की सेना के कमांडर और मालवा के शासक मल्हार राव होल्कर पुणे जाते समय चंडी में रुके और गाँव के एक मंदिर की सेवा में आठ वर्षीय अहिल्या को देखा। उनकी धर्मपरायणता और चरित्र से प्रभावित होकर, मल्हार के बेटे खांडे राव होलकर ने पेशवा की सलाह पर अहिल्या से विवाह किया। उन्होंने 1733 में खांडे राव से शादी की।

सन 1745 में अहिल्याबाई के पुत्र हुआ और तीन वर्ष बाद एक कन्या। पुत्र का नाम मालेराव और कन्या का नाम मुक्ताबाई रखा। उन्होंने बड़ी कुशलता से अपने पति के गौरव को जगाया। कुछ ही दिनों में अपने पिता के मार्गदर्शन में खाण्डेराव एक अच्छे सिपाही बन गये। मल्हार राव को भी देखकर संतोष होने लगा। पुत्रवधू अहिल्याबाई को भी वह राजकाज की शिक्षा देते रहते थे। उनकी बुद्धि और चतुराई से वह बहुत प्रसन्न होते थे। अहिल्या कई अभियानों पर खांडे राव के साथ गईं। अपने पूरे वैवाहिक जीवन में उनका पालन-पोषण उनकी सास गौतम बाई ने किया, जिन्हें आज अहिल्या बाई के जीवन में स्थापित मूल्यों का श्रेय दिया जाता है। उन्होंने उसे प्रशासन, लेखा और राजनीति में प्रशिक्षित किया और अंततः 1759 में उसे खासगी जागीर सौंप दी।

1754 में, खांडे राव ने अपने पिता मल्हार राव होल्कर के साथ मुगल सम्राट अहमद शाह बहादुर के जनरल मीर बख्शी के समर्थन के अनुरोध पर भरतपुर के जाट राजा सूरज मल के कुम्हेर किले की घेराबंदी की। सूरजमल ने मुगल बादशाह के विद्रोही वजीर सफदर जंग का पक्ष लिया था। खांडे राव युद्ध के दौरान एक खुली पालकी में अपने सैनिकों का निरीक्षण कर रहे थे, तभी जाट सेना द्वारा छोड़ा गया एक तोप का गोला उन पर लगा, जिससे उनकी मृत्यु हो गई। पति की मृत्यु के बाद अहिल्याबाई को उनके ससुर ने सती होने से रोक दिया था। अपने पति के निधन के बाद, उन्हें मल्हार राव होलकर द्वारा सैन्य मामलों में प्रशिक्षित किया।

मल्हार राव के निधन के बाद रानी अहिल्याबाई ने राज्य का शासन-भार सम्भाला था। वे मालवा साम्राज्य की मराठा होलकर महारानी थीं। अहिल्याबाई किसी बड़े राज्य की रानी नहीं थीं, लेकिन अपने राज्य-काल में उन्होंने जो कुछ किया वह आश्चर्यचकित करने वाला है। वह एक बहादुर योद्धा और कुशल तीरंदाज थीं। उन्होंने कई युद्धों में अपनी सेना का नेतृत्व किया और हाथी पर सवार होकर वीरता के साथ लड़ीं।

रानी अहिल्याबाई ने अपनी मृत्यु (13 अगस्त सन् 1795) पर्यंत बड़ी कुशलता से राज्य का शासन चलाया। उनकी गणना आदर्श शासकों में की जाती है। अहिल्याबाई एक दार्शनिक रानी, धर्मपारायण स्त्री, हिंदू धर्म को मानने वाली और भगवान शिव की बड़ी भक्त थी। वे अपनी उदारता और प्रजा-वत्सलता के लिए प्रसिद्ध हैं। उनका इकलौता पुत्र मालेराव सन् 1766 ई. में दिवंगत हो गया। तब अहिल्याबाई ने 1767 ई. में तुकोजी होल्कर को सेनापति नियुक्त किया।

विशेष योगदान

रानी अहिल्याबाई ने भारत के भिन्न-भिन्न भागों में अनेक मन्दिरों, धर्मशालाओं का निर्माण कराया था। कलकत्ता से बनारस तक की सड़क बनवाई। बनारस में अन्नपूर्णा का मन्दिर तथा गया में विष्णु मन्दिर उनके बनवाए हुए हैं। इन्होंने अनेक घाट बनवाए, कुओं और बावड़ियों का निर्माण करवाया, मार्ग बनवाए, भूखों के लिए अन्नक्षेत्र खोले, प्यासों के लिए प्याऊ लगवाई, शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन हेतु मंदिरों में विद्वानों की नियुक्ति की। इसके अलावा उन्होंने काशी, गया, सोमनाथ, अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, द्वारिका, बद्रीनारायण, रामेश्वर, जगन्नाथ पुरी इत्यादि प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों पर मंदिर बनवाए और धर्म शालाएँ खुलवाई।

शिव जी की भक्त

उनका सारा जीवन कर्तव्य-पालन और परमार्थ की साधना में ही रहा। वे भगवान शिव की बड़ी भक्त थीं। बिना उनके पूजन के मुँह में पानी की बूंद नहीं जाने देती थीं। कहा जाता है कि रानी अहिल्याबाई के स्वप्न में एक बार भगवान शिव आए। इसलिए उन्होंने 1777 में विश्व प्रसिद्ध काशी विश्वनाथ मंदिर का जीर्णोद्धार कराया। सारा राज्य उन्होंने शंकर को अर्पित कर रखा था और आप उनकी सेविका बनकर शासन चलाती थीं। उनका पिचार था कि "संपति सब रघुपति के आहि" सारी संपत्ति भगवान की है। वे राजाज्ञाओं पर हस्ताक्षर करते समय अपना नाम नहीं लिखती थीं। नीचे केवल 'श्री शंकर' लिख देती थीं। उनके रुपयों पर शंकर का लिंग और बिल्व पत्र का चित्र अंकित था और पैसों पर नंदी का। उनके बाद में भारतीय स्वराज्य की प्राप्ति तक इंदौर के सिंहासन पर जितने नरेश आए सबकी राजाज्ञाएँ श्रीशंकर आज्ञा के रूप में जारी होती थीं।

अहिल्याबाई का रहन सहन बिल्कुल सादा था। शुद्ध सफेद वस्त्र धारण करती थीं। जेवर आदि कुछ नहीं पहनती थीं। भगवान की पूजा, अच्छे ग्रंथों को सुनना और राजकाज आदि में नियमित रहती थीं।

शांति और सुरक्षा की स्थापना

मल्हार राव होल्कर के जीवन काल में ही उनके पुत्र खंडेराव का निधन 1754 ई. में हो गया था। अतः मल्हार राव के निधन के बाद रानी अहिल्याबाई ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ली, राज्य में बड़ी अशांति थी। चोर, डाकू आदि के उपद्रवों से लोग बहुत तंग थे। ऐसी हालत में उन्होंने देखा कि राजा का सबसे पहला कर्तव्य उपद्रव करने वालों को काबू में लाकर प्रजा को निर्भयता और शांति प्रदान करना है। उपद्रवों में भीलों का खास हाथ था। उन्होंने दरबार में अपने सारे सरदारों और प्रजा का ध्यान इस ओर दिलाते हुए घोषणा की "जो वीर पुरुष इन उपद्रवी लोगों को काबू में ले आवेगा, उसके साथ मैं अपनी लड़की मुक्ताबाई की शादी कर दूँगी।"

इस घोषणा को सुनकर यशवंतराव फणसे नामक एक युवक उठा और उसने बड़ी नम्रता से अहिल्याबाई से कहा कि वह यह काम कर सकता है। महारानी बहुत प्रसन्न हुईं।

यशवंतराव अपने काम में लग गए और बहुत थोड़े समय में उन्होंने सारे राज्य में शांति की स्थापना कर दी। महारानी ने बड़ी प्रसन्नता के साथ मुक्ताबाई का विवाह यशवंतराव फणसे से कर दिया। इसके बाद अहिल्याबाई का ध्यान शासन के भीतरी सुधारों की तरफ गया। राज्य में शांति और सुरक्षा की स्थापना होते ही व्यापार, व्यवसाय और कला-कौशल की बढ़ोत्तरी होने लगी और लोगों को ज्ञान की उपासना का अवसर भी मिलने लगा। नर्मदा के तीर पर महेश्वरी उनकी राजधानी थी। वहाँ तरह-तरह के कारीगर आने लगे ओर शीघ्र ही वस्त्रों का निर्माण का वह एक सुंदर केंद्र बन गया।

राज्य के विस्तार को व्यवस्थित करके उसे तहसीलों और जिलों में बाँट दिया गया ओर प्रजा की तथा शासन की सुविधा को ध्यान में रखते हुए तहसीलों और जिलों के केंद्र स्थापित करके न्यायालयों की स्थापना भी कर दी गई। राज्य की सारी पंचायतों के काम को व्यवस्थित किया गया। आखिरी अपील मंत्री सुनते थे। परंतु यदि उनके फैसले से किसी को संतोष न होता तो महारानी खुद भी अपील सुनती थी।

सेनापति के रूप में

मल्हारराव के भाई बंधुओं में तुकोजीराव होल्कर एक विश्वास पात्र युवक थे। मल्हारराव ने उन्हें भी सदा अपने साथ में रखा था और राजकाज के लिए तैयार कर लिया था। अहिल्याबाई ने इन्हें अपना सेनापति बनाया और चौथ वसूल करने का काम उन्हें सौंप दिया। वैसे तो उम्र में तुकोजीराव होल्कर अहिल्याबाई से बड़े थे, परंतु तुकोजी उन्हें अपनी माता के समान ही मानते थे और राज्य का काम पूरी लगन ओर सच्चाई के साथ करते थे। अहिल्याबाई का उन पर इतना प्रेम था कि वह भी उन्हें पुत्र जैसा मानती थीं। राज्य के कागजों में जहाँ कहीं उनका उल्लेख आता है वहाँ तथा मुहरों में भी 'खंडोजी सुत तुकोजी होल्कर' इस प्रकार कहा गया है।

महिला सशक्तीकरण की पक्षधर

भारतीय संस्कृति में महिलाओं को शक्ति स्वरूपा दुर्गा के समान बताया गया है। ठीक इसी तरह अहिल्याबाई ने स्त्रियों को उनका उचित स्थान दिया। नारीशक्ति का भरपूर उपयोग किया। उन्होंने यह बता दिया कि स्त्री किसी भी स्थिति में पुरुष से कम नहीं है। वे स्वयं भी पति के साथ रणक्षेत्र में जाया करती थीं। पति के देहान्त के बाद भी वे युद्ध क्षेत्र में उतरती थीं और सेनाओं का नेतृत्व करती थीं। अहिल्याबाई के गद्दी पर बैठने के पहले शासन का ऐसा नियम था कि यदि किसी महिला का पति मर जाए और उसका पुत्र न हो तो उसकी संपूर्ण संपत्ति राजकोष में जमा कर दी जाती थी, परंतु अहिल्याबाई ने इस कानून को बदल दिया और मृतक की विधवा को यह अधिकार दिया कि वह पति द्वारा छोड़ी हुई संपत्ति की वारिस रहेगी और अपनी इच्छानुसार अपने उपयोग में लाए और चाहे तो उसका सुख भोगे या अपनी संपत्ति से जनकल्याण के काम करे।

मृत्यु

राज्य की चिंता का भार और उस पर प्राणों से भी प्यारे लोगों का वियोग। इस सारे शोक-भार को अहिल्याबाई का शरीर अधिक नहीं संभाल सका और 13 अगस्त सन 1795 को (आयु 70 वर्ष) उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गई। अहिल्याबाई के निधन के बाद तुकोजी इन्दौर की गद्दी पर बैठे।

झूठ के नामकरण

—डॉ अखिलेश बार्चे

"हाँ दादा पायलागी! कैसे हैं. . .? कल जैसे ही दुकान के शुभारंभ का समाचार मिला मन प्रसन्न हो गया। अब आऊँगा तो लडडू ज़रूर खाऊँगा. . .सब आपकी कृपा है. . .जी हाँ जी हाँ. . .।"

दूरभाष पर कवि – मित्र की दूर शहर में रहने वाले एक वरिष्ठ कवि से बातचीत हो रही है। कवि मित्र बात करते समय यों झुके हुए थे, मानो चरण स्पर्श करने के बाद रीढ़ सीधी करने का समय ही नहीं मिल पा रहा हो। वास्तव में वे एक ऐसे सज्जन से बात करने में लगे थे जिनकी पहुँच पुरस्कार/चयन समितियों में अच्छी थी, और जो जुगाड़मेंट के क्षेत्र में माहिर माने जाते थे। कविमित्र को जैसे ही पता लगा कि इन सज्जन के तीसरे बेटे ने एस.टी.डी., पी.सी.ओ., फ़ोटोकॉपी की दुकान खोली है, उन्होंने तुरंत अवसर का लाभ उठाया और दूरसंचार विभाग के तारों पर सवार होकर उनके पाँव छू लिए।

बात पूरी कर मेरे पास आकर बैठते हुए बोले, "बुढ्ढ़ा बहुत खुर्राट है, पर क्या करें! साहित्य के क्षेत्र में जमना है तो ऐसे लोगों के पाँव छूने ही पड़ेंगे।" मैंने देखा उनके चेहरे पर चंद मिनटों पहले जला हुआ खुशी का बल्ब फक्क से बुझ गया था और वे कड़कड़ा रहे थे। बाद में बड़ी देर तक तथाकथित 'खुर्राट बुढ्ढ़े' को गालियाँ देते रहे। मैं समझ नहीं पा रहा था कि उनकी वह खुशी वास्तविक थी या यह गुस्सा वास्तविक है। यह तो ज़ाहिर है कि उनके कथन में कुछ न कुछ असत्य अवश्य था।

सच पूछा जाए तो जीवन में हर आदमी कभी न कभी झूठ बोलता है। झूठ की अपनी महत्ता, अपनी उपयोगिता है। सत्य बोलने वाले लोग सतयुग में भी बहुत कम रहे होंगे इसलिए तो राजा हरिश्चंद्र का 'सत्यवादी' होना आज तक याद किया जाता है। धर्मराज युधिष्ठिर का छदम सत्य 'अश्वत्थामा हत: नरो वा कुंजरो वा' पुराण प्रसिद्ध है। और तो और बहुत सारे पौराणिक पात्र तो झूठा(छदम) रूप भी धारण करते थे। गौतम ऋषि नदी पर स्नान के लिए गए तो एक देवता ने तुरंत गौतम ऋषि का डबल रोल लिया व पहुँच गए अहिल्या के समीप। बाकी की कथा आपको मालूम ही है।

झूठ का विकास मानव सभ्यता के विकास के साथ हुआ। जब मानव असभ्य था वह सत्य के नज़दीक था, जब वह सभ्य हो गया, सत्य से दूर हो गया। अत्याधुनिक व्यक्ति अत्यधिक झूठ बोलता है। कहते हैं 'झूठ के पाँव नहीं होते।' शायद इसीलिए वह उड़कर कभी भी, कहीं भी पहुँच जाता है। झूठ की व्यापकता इतनी है कि यह दुनिया के सभी देशों में अपनी जड़ें जमा चुका है। यह भी 'बिन पग चले, सुने बिनु काना' की स्थिति में आ गया है। एक पुराना लोकगीत है, 'झूठ बोले कौवा काटे, काले कौवे से डरियो' जिस पर एक फ़िल्मी गीत की रचना हुई थी। मुझे आज तक किसी कौवे ने नहीं काटा, इसका मतलब यह हुआ कि या तो यह बात झूठी है या आजकल झूठों की बढ़ती ताकत को देखकर कौवों में काँटने की हिम्मत नहीं रही।

भारतीय चिंतन में 'मनसा वाचा कर्मणा' को बहुत महत्व दिया गया है जिसका अर्थ है – 'जो मन में है वही कहो और जो कहा है वही करो।' गोकुल की गोपी बिना किसी लाग लपेट के कहती है – 'मन मोहना. . .बड़े झूठे'।

आज स्थिति ठीक उल्टी हो गई है। जो मन में है उसे जुबाँ पर बिलकुल मत आने दो, और जो कह दिया वैसा तो बिल्कुल मत करो। जब कोई नेता कहता है 'मैं पार्टी छोड़ने की बात सोच भी नहीं सकता।' तो जनता समझ जाती है कि उसने वर्तमान पार्टी छोड़कर दूसरी पार्टी में घुसने की जोड़–तोड़ शुरू कर दी है। या जब पेट्रोलियम पदार्थों के दाम बढ़ने का खंडन करें तो जनता ताड़ जाती है कि पेट्रोल–डीज़ल महँगा होने वाला है।

सुनते हैं पहले आदमी इतना सच्चा होता था कि झूठ पकड़े जाने पर उसका चेहरा फक्क हो जाता था। जब झूठ बढ़ने लगा तो झूठ पकड़ने की मशीन ईजाद की गई। आजकल तो कई लोगों ने इस मशीन पर भी उसी तरह विजय पा ली है जैसे मच्छरों ने डीडीटी पर या मलेरिया परजीवी ने ब्लड टेस्ट पर। एक समय एक विशेष प्रकार के झूठ का नामकरण भी हुआ था – सफ़ेद झूठ। इसमें व्यक्ति इतनी होशियारी से झूठ बोलता था कि उसकी शिनाख़्त ही नहीं हो पाती थी और सुनने वाला उसे पूरी तरह सच्चा समझ लेता था। 'सफ़ेद झूठ' ने लंबे समय तक संवादों, लेखों, कहानियों में अपना स्थान बना कर रखा।

एक निष्णात झूठ जो इन दिनों खूब चल रहा है उसमें नामकरण का प्रश्न भी चर्चाओं और गोष्ठियों में उठाया जा रहा है, मसलन किसी न्यूज़ चैनल पर कैमरे के सामने मौजूद पार्टी प्रवक्ता कहता है, 'हम लोगों में कोई मतभेद नहीं हैं, इस मसले पर सभी लोग एक मत हैं।' सारे दर्शकों को शत प्रतिशत विश्वास होता है कि उसकी बात में ज़रा-सी भी सत्यता नहीं है। पार्टी में जूतम पौज़ार चल रही है। फिर भी प्रवक्ता जी के बोलने में अद्वितीय आत्मविश्वास है। वह बार–बार कहते हैं, "पार्टी में मतभेदों की बात विरोधियों द्वारा फैलाई गई है, इनमें कोई सच्चाई नहीं है।" अब इस झूठ को आप क्या नाम देंगे? इसके सामने तो सफ़ेद झूठ भी पानी भरता प्रतीत होता है। अगले दिन वही प्रवक्ता बड़ी शान से घोषणा करता है, 'पार्टी में अनुशासन बनाए रखने की ख़ातिर चार लोगों को छ: वर्षों के लिए पार्टी से निष्कासित किया जाता है।'

विज्ञापनों की दुनिया ने 'रेशमी झूठ' किंवा 'चमकीले झूठ' को घर–घर में प्रसारित कर दिया है। बुढ़ाते लोग अपने श्वेत केशों को अश्वेत बनाने के लिए विज्ञापनी वस्तुएँ ख़रीदते हैं व खुद को जवान सिद्ध करते हैं। बालों को काला करने के जादू ने स्त्री–पुरुष सभी को सम्मोहित कर रखा है। संधिकाल में जी रही रमणियाँ, जो जवानी को जाने नहीं देना चाहतीं, अपनी त्वचा को रेशमी मुलायम बनाने के प्रसाधनों का भरपूर दोहन कर रही हैं। जन्नत की हक़ीक़त भले ही सबको मालूम हो, दिल को समझाने के लिए थोड़ी-सी लीपापोती में बुरा क्या है? आख़िर चमकीला झूठ चमक ही बढ़ाएगा ना? सच बोलने में अक्सर ख़तरा रहता है। चोर को चोर या भ्रष्ट को भ्रष्ट कहना कतई समझदारी नहीं है इसलिए चतुर सुजान अपनी वाक्पटुता से बात को सत्य असत्य से परे ले जाते हैं, अपने पाँव पर कुल्हाड़ी नहीं मारते। यदि ज़रूरी ही हो तो 'सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयात' की सुरक्षित नीति अपनाते हैं। आख़र, 'राजा नंगा है' कहने की नासमझी कोई नादान ही करता है। ऐसी ही नादानी व्यंग्यकार करता रहता है, जहाँ विसंगति देखता है तुरंत बोल पड़ता है, पर इस बारे में कुछ बोलना भी बेकार है क्यों कि यदि वह समझदार ही होता तो व्यंग्यकार क्यों बनता?

हिंदी की स्थिति

—अनूप कुमार शुक्ल

जैसे ही सितंबर का महीना आता है, हिंदी की याद में हर हिंदुस्तान का दिल धड़कने लगता है। हम जो शुद्ध हिंदुस्तानी ठहरे, हमारा जी और भी व्याकुल हो उठता है, सावन के महीने में जिस तरह महिलाओं को पीहर की याद आती है ठीक वैसे ही। मन में हूक सी उठती है कि सब जग हिंदीमय हो जाए। इसी तड़फ़ को बनाए रखने के लिए हर साल चौदह सितंबर को हिंदी दिवस मनाने की परंपरा चल पड़ी हैं। हर साल सितंबर का महीना हाहाकारी भावुकता में बीतता है। कुछ कविता पंक्तियों को तो इतनी अपावन क्रूरता से रगड़ा जाता है कि वो पानी पी-पीकर अपने रचयिताओं को कोसती होंगी। उनमें से कुछ बेचारी हैं:-

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल

बिनु निज भाषाज्ञान के मिटै न हिय को सूल।

या फिर

मानस भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती,

भगवान भारतवर्ष में गूंजे हमारी भारती।

या फिर

कौन कहता है आसमान में छेद नहीं हो सकता.,

एक पत्थर तो तबियत से उछालो यारो।

कहना न होगा कि दिल के दर्द के बहाने से बात पत्थरबाजी तक पहुंचने के लिए अपराधबोध, निराशा, हीनताबोध, कर्तव्यविमुखता, गौरवस्मरण की इतनी संकरी गलियों से गुज़रती है कि असमंजस की स्थिति पैदा हो जाती है कि वास्तव में हिंदी की स्थिति क्या है?

ऐसे में श्रीलाल शुक्ल जी का लिखा उपन्यास 'राग दरबारी' याद आता है जिसका यह वर्णन हिंदी समेत सभी भारतीय भाषाओं पर लागू होता है:-

एक लड़के ने कहा, "मास्टर साहब, आपेक्षिक घनत्व किसे कहते हैं?"

वे बोल, ."आपेक्षिक घनत्व माने रिलेटिव डेंसिटी।"

एक दूसरे लड़के ने कहा, "अब आप देखिए, साइंस नहीं अंग्रेज़ी पढ़ा रहे हैं।"

वे बोले, ."साइंस साला बिना अंग्रेज़ी के कैसे आ सकता है?"

हमें लगा कि हिंदी की आज की स्थिति के बारे में मास्टर साहब से बेहतर कोई नहीं बता सकता। सो लपके और गुरु को पकड़ लिया। उनके पास कोई काम नहीं था लिहाज़ा बहुत व्यस्त थे। हमने भी बिना भूमिका के सवाल दागना शुरु कर दिया।

सवाल:- हिंदी दिवस किस लिए मनाया जाता है?

जवाब:- देश में तमाम दिवस मनाए जाते हैं। स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस, गांधी दिवस, बाल दिवस, झंडा दिवस वगैरह।

ऐसे ही हिंदी दिवस मना लिया जाता है। जैसे आज़ादी की, संविधान की, नेहरू–गांधी जी की याद कर ली जाती हैं वैसे ही हिंदी को भी याद रखने के लिए हिंदी दिवस मना लिया जाता है। राजभाषा होने के नाते इतना तो ज़रूरी ही है मेरे ख्याल से।

सवाल:- लेकिन केवल एक दिन हिंदी दिवस मनाए जाने का क्या औचित्य है?

जवाब:- अब अगर रोज़ हिंदी दिवस ही मनाएंगे तो बाकी दिवस एतराज़ करेंगे न! सबको बराबर मौका मिलना चाहिए। एक फ़ायदा इसका यह भी होता है कि लोगों के मन में जितनी हिंदी होती है वह सारी एक दिन में निकाल कर साल भर मस्त रहते हैं। हिंदी दिवस पर सारी हिंदी उडे.लकर बाकी सारा साल बिना हिंदी के तनाव के निकल जाता है। साल में हिंदी की एक बढ़िया खुराक ले लेने से पूरे साल देशभक्ति का और कोई बुखार नहीं चढ़ता। बड़ा आराम रहता है।

सवाल:- हिंदी की वर्तमान स्थिति कैसी है आपकी नज़र में?

जवाब:- हिंदी की हालत तो टनाटन है। हिंदी को किसकी नज़र लगनी है?

सवाल:- किस आधार पर कहते हैं आप ऐसा?

जवाब:- कौनौ एक हो तो बताएं। कहां तक गिनाएं?

सवाल:- कोई एक बता दीजिए।

जबाव:- हम सारा काम बुराई-भलाई छोड़कर टीवी पर हिंदी सीरियल देखते हैं। घटिया से घटिया, इतने घटिया कि देखकर रोना आता है, सिर्फ़ इसीलिए कि वो हिंदी में बने है। यही सीरियल अगर अंग्रेज़ी में दिखाया जाए तो चैनेल बंद हो जाए। करोड़ों घंटे हम रोज़ होम कर देते हैं हिंदी के लिए। ये कम बड़ा प्रमाण/आधार है हिंदी की टनाटन स्थिति का?

सवाल:- अक्सर बात उठती है कि हिंदी को अंग्रेज़ी से ख़तरा है। आपका क्या कहना है?

जवाब:- कौनौ ख़तरा नहीं है। हिंदी कोई बताशा है क्या जो अंग्रेज़ी की बारिश में घुल जायेगी? न ही हिंदी कोई छुई-मुई का फूल है जो अंग्रेज़ी की उंगली देख के मुरझा जाएगी।

सवाल:- हिंदी भाषा में अंग्रेज़ी के बढ़ते प्रदूषण हिंगलिश के बारे में आपका क्या कहना है?

जवाब:- ये रगड़-घसड़ तो चलती ही रहती है। जिसके कल्ले में बूता होगा वो टिकेगा। जो बचेगा सो रचेगा। समय की मांग को जो भाषा पूरा करती रहेगी उसकी पूछ होगी वर्ना आदरणीय, वंदनीय, पूजनीय बताकर अप्रासंगिक बन जाएगी।

सवाल:- लोग कहते हैं कि अगर कंप्यूटर के विकास की भाषा हिंदी जैसी वैज्ञानिक भाषा होती तो वो आज के मुकाबले बीस वर्ष अधिक विकसित होता।

जवाब:- ये बात तो हम पिछले बीस साल से सुन रहे हैं। तो क्या वहां कोई सुप्रीम कोर्ट का स्टे है हिंदी में कंप्यूटर के विकास पर? बनाओ। निकलो आगे। झुट्ठै स्यापा करने रहने क्या मिलेगा?

सवाल:- बॉलीवुड वाले जो हिंदी की रोटी खाते हैं, हिंदी बोलने से क्यों कतराते हैं? रोटी खाते हैं, हिंदी बोलने से क्यों कतराते हैं? इसका जवाब ज़रा विस्तार से दें काहे से कि यह सिनेमा वालों से जुड़ा है और इसलिए जवाब में ये दिल मांगे मोर की ख़ास फ़रमाइस है लोगों की।

जवाब:- इसके पीछे आर्थिक मजबूरी मूल कारण हैं। असल में तीन घंटे के सिनेमा में काम करने के लिए हीरो-हीरोइनों को कुछेक करोड़ रुपये मात्र मिलते हैं। हिंदी फ़िल्मों में काम करते समय तो डायलाग लिखने वाला डायलाग लिख देता है वो डायलाग इन्हें मुफ़्.त में मिल जाते हैं सो ये बोल लेते हैं। एक बार जहां सिनेमा पूरा हुआ नहीं कि लेखक लोग हीरो-हीरोइन को घास डालना बंद कर देते हैं। इनके लिए डायलाग लिखना भी बंद कर देते हैं। अब इतने पैसे तो हर कलाकार के पास तो होते नहीं कि पैसे देकर ज़िंदगी भर के लिए डायलाग लिखा ले। पचास खर्चे होते हैं उनके। माफ़िया को उगाही देना होता है, पहली बीबी को हर्जाना देना होता है, एक फ्लैट बेच कर दूसरा ख़रीदना होता है। हालात यह कि तमाम खर्चों के बीच वह इत्ते पैसे नहीं बचा पाता कि किसी कायदे के लेखक से डायलाग लिखा सके। मजबूरी में वह न चाहते हुए भी अपने हालात की तरह टूटी-फूटी हिंदी-अंग्रेज़ी बोलने पर मजबूर होता है।

अब हिंदी चूंकि वह थोड़ी बहुत समझ लेता है लिहाज़ा उसे पता लग जाता है कि कितनी वाहियात बोल रहा है। फिर वह घबराकर अंग्रेज़ी बोलना शुरू कर देता है। अंग्रेज़ी में यह सुविधा होती है चाहे जैसे बोलो, असर करती है। आत्मविश्वास के साथ कुछ ग़लत बोलो तो कुछ ज़्यादा ही असर करती है। बोलचाल में जो कुछ चूक हो जाती है उसे ये लोग अपने शरीर की भाषा (बाडी लैन्गुयेज) से पूरा करते हैं। बेहतर अभिव्यक्ति के प्रयास में कोई-कोई हीरोइने तो अपने पूरे शरीर को ही लैंग्वेज में झोंक देती हैं। जिह्वा मूक रहती है, जिस्म बोलने लगता है। अब हिंदी लाख वैज्ञानिक भाषा हो लेकिन इतनी सक्षम नहीं कि ज़बान के बदले शरीर से निकलने लगे। तो यह अभिनेता हिंदी बोलने से कतराते नहीं। उनके पास समुचित डायलाग का अभाव होता है जिसके कारण वे चाहते हुए भी हिंदी में नहीं बोल पाते हैं।

सवाल:- चलिए वालीवुड का तो समझ में आया कुछ मामला और मजबूरी लेकिन अच्छी तरह हिंदी जानने वाले बीच-बीच में

अंग्रेज़ी के वाक्य क्यों बोलते रहते हैं?

जवाब:- आमतौर पर यह बेवकू.फ़ी लोग इसलिए करते हैं ताकि लोग उनको मात्र हिंदी का जानकार समझकर बेवकूफ़समझने की बेवकूफ़ी न कर बैठे। हिंदी के बीच-बीच में अंग्रेज़ी बोलने से व्यक्तित्व में उसी निखार आता है जिस क्रीम पोतने से चेहरे पर चमक आ जाती है और जीवन साथी तुरंत पट/फिदा हो जाता है। वास्तव में ऐसे लोगों के लिए अंग्रेज़ी एक जैक की तरह काम करता है जिसके सहारे वे अपने विश्वास का पहिया ऊपर उचकाकर व्यक्तित्व का पंचर बनाते हैं। लेकिन देखा गया है ऐसे लोगों का हिंदी और अंग्रेज़ी पर समान अधिकार होता है यानी दोनों भाषाओं का ज्ञान चौपट होता है उनका।

सवाल:- हिंदी दिवस पर आपके विचार?

जवाब:- हमें तो भइया ये खिजाब लगाकर जवान दिखने की कोशिश लगती है। शिलाजीत खाकर मर्दानगी हासिल करने का प्रयास। जो करना हो करो, नहीं तो किनारे हटो। अरण्यरोदन मत करो। जी घबराता है।

सवाल:- हिंदी की प्रगति के बारे में आपके सुझाव?

जवाब:- देखो भइया, जबर की बात सब सुनते है। मज़बूत बनो-हर तरह से। देखो तुम्हारा रोना-गाना तक लोग नकल करेंगे। तुम्हारी बेवकूफ़ियों तक का तार्किक महिमामंडन होगा। पीछे रहोगे तो रोते रहोगे-ऐसे ही। हिंदी दिवस की तरह। इसलिए समर्थ बनो। वो क्या कहते हैं:- इतना ऊंचे उठो कि जितना उठा गगन है।

सवाल:- आप क्या ख़ास करने वाले हैं इस अवसर पर?

जवाब:- हम का करेंगे? विचार करेंगे। खा-पी के थोड़ा चिंता करेंगे हिंदी के बारे में। चिट्ठा/लेख लिखेंगे। लिखके थक जाएंगे। फिर सो जाएंगे। और कितना त्याग किया जा सकता है-- बताओ?

विनीता शुक्ला

जिन्दगी का तमाशा किया

ज़िंदगी का तमाशा किया ,
बेवफ़ा तुमने ये क्या किया।।

हमने सब कुछ तुझे मान कर,
तुझको अपना खुदा था किया।।

झूठे उसके हैं वादे, मुझे
मेरे दिल ने इशारा किया।।

जितनी नफ़रत है तुझसे मुझे,
इश्क़ भी बे तहाशा किया।।

टूटते टूट जाते मगर ,
हमने ख़ुद पर भरोसा किया।।

सांसों ने सांसों से आज फ़िर,
इक नया सा बहाना किया।।

" रूह "किसकी इबादत में यूँ,
तुमने खुद से ही धोख़ा किया।।

बोधि गया

-काका कालेलकर

बोधिगया कोई ऐसा-वैसा तीर्थ नहीं है। बोधिगया का नाम सुनते ही माथा भक्ति से झुक जाता है। पुराने ज़माने में जिस स्थान को 'उस्वेला' कहते थे। आज से ढाई हज़ार वर्ष पहले नेरंजरा नदी के तीर पर इस वन में एक पीपल के पेड़ के नीचे एक युवक बैठा था। उसका शरीर सूखकर काँटा हो गया था। दोनों आँखें दो आलोकि समान गहरी हो गई थीं। परंतु उनसे दया, तप और तेज़का अमृत टपकता था। छाती की एक-एक पसली गिनी जा सकती थी। दाढ़ी, मूँछ और बाल बढ़े हुए थे। लंबे-लंबे नख दीर्घ उपवास के कारण सफ़ेद पड़ गए थे। बाहर से वह युवक विलकुल शांत दिखाई देता था। परंतु असके अभ्यंतर में महायुद्ध चल रहा था। भारतीय युद्ध तो दिन डूबते ही बंद हो जाता था, पर इसका युद्ध अहोरात्र चलता था। भारतीय युद्ध अठारह दिन में समाप्त हो गया। इसका युद्ध तो अठारह दिन बाद रंग लाया। यह युद्ध किसी व्यक्ति के विरुद्ध नहीं, मनुष्य के सनातन शत्रु मार (काम) के विरुद्ध था। जिस युद्ध में मनुष्य-जाति के हित के लिए लड़ने वाला वह एकाकी वीर दृढ़ निश्चय करके बैठा था। मनुष्य-जाति का दुःख अब मुझ से देखा नहीं जाता। क्या मनुष्य अनंत काल तक इस तरह दुःख सहन के लिए ही पैदा किया गया है? इस दुःख की दवा कहीं न कहीं तो होनी ही चाहिए। अगर हो, तो इस जीवन की इससे अधिक सार्थकता और क्या हो सकती है, कि यह उस औषधि की शोध में बिताया जाए? और, अगर उस औषधि का मिलना ही असंभव हो, तो फिर इस जीने में ही क्या धरा है?

वहाँ वह नौजवान ही नहीं बैठा था, बल्कि भारत की सनातन श्रद्धा सजीव होकर बैठी थी। नवयुवकों के कुलगुरु, आस्तिकता के सागर, निर्भयता की मूर्ति, भगवान् नचिकेता का वह अवतार था।

अक्षय्य धाम माँगने वाले राजपुत्र ध्रुव की परंपरा का वह अनुयाई था; कारण उसकी निष्ठा भी उतनी ही ध्रुव थी। युवक ने यह प्रण कर लिया था कि चाहे इसी आसनपर शरीर सूखकर काठ हो जाए, हाड, माँस और चमड़ी हवा में मिल जाएँ, परंतु जबतक इस भवरोग की पीड़ा का नाशक बहुकल्प—दुर्लभ बोधि (ज्ञान) नहीं मिलेगा, तब तक यह शरीर यहाँ से टस-से-मस न होगा।

आजतक ऐसा एक भी अदाहरण देखने में नहीं आया, जिसमें सत्य सकल्य विफल हुआ हो। युवक को संतोष हुआ। सिद्धार्थ का नाम सार्थक हुआ। राजपुत्र गौतम, गौतम के बदले अब बुद्ध हो गया। उसी क्षण एक श्रद्धावान साध्वी थाली में पायस (खीर) लेकर वहाँ आई, और उसने वह वरान्न उस वन-देव को अर्पण किया।

यही स्थान बोधिगया है। जिस पुरातन अश्वत्थ-वृक्ष के नीचे भगवान् बुद्ध ने यह अंतिम साधना की, उसके सामने आज एक भव्य मंदिर खड़ा है। बग़ल में चक्रमण1 का स्थान है। आसपास प्राचीन ऋषियों के समान बड़े-बड़े वृक्ष हैं। इन वृक्षों ने कितनी ऋतुएँ सही होंगी, कितने प्राणियों की सहायता की होगी और कितने साधकों की श्रद्धा-भक्ति के ये साक्षी रहे होंगे!

हम पहले एक पेड़ के नीचे बैठे। कुओं से पानी निकालकर हाथ पैर धोए। पानी पिया। फिर प्रसन्न अंत करण से मंदिर में दर्शन करने गए। मंदिर के भीतर बुद्ध भगवान की भव्य मूर्ति थी। उन्हें साष्टांग दंडवत प्रणाम कर हम मंदिर पर चढ़े और गुंबद के आस-पास घूमे। कारीगरी में भव्यता है, लेकिन मादेव या नवीनता नहीं। नीचे उतर कर मंदिर की परिक्रमा की।ज्यूँ-ज्यूँ मैं परिक्रमा करता था, त्यूँ-त्यूँ मेरा भाव बदलता था। सारा जीवन दृष्टि के सामने खड़ा हो गया। और तुरंत दृष्टि शून्य हो गई। पानी में तैरने वाला तैराक डुबकी लगाकर जब गहरा और गहरा पैठता जाता है, तब जिस प्रकार निर्भय होते हुए भी वह भयभीत-सा हो जाता है, कुछ वैसी ही इस क्षण मेरी स्थिति हुई। जीवन के पृष्ठभाग (सतह) पर तो मैंने ख़ूब विचरण किया था। ख़ूब तैरा था। परंतु इस बार मैं गहराई में अतरा। ऐसी स्थिति पहले एक ही बार ध्यान में हुई थी।

परंतु इसकी तुलना में वह स्पर्शमात्र थी। मेरी परिक्रमाएँ पूरी होने पर मैं पिछवाड़े के अश्वत्थको वंदन करने गया। घर का त्यागकर मैं हिमालय की ओर जा रहा था। भविष्य मेरे सामने अज्ञात था। मैंने अपनी नाव की सारी रस्सियाँ काट डाली थीं। सारी पतवार चढ़ा दी थीं। मेरी नौका फिरसे अपने पुराने बंदरगाह में लौटेगी, यह धारणा उस समय नहीं थी। उस समय की मनोवृत्तिका वर्णन कैसे हो सकता है? मैं बाहर से शांत था। लेकिन भीतर मनो ज्वालामुखी धधक रहा था। मुझे यह भान था कि मैं कोई त्याग कर रहा हूँ। मैं जानता था कि यह भान आध्यात्मिक उन्नत्ति में बाधक होता है। परंतु फिर भी, वह मिटता नहीं था। इतने में अंदर से एक आवाज़ आई त्याग करना सहज है। लेकिन किए हुए त्याग के योग्य बनने में ही पुरुषार्थ है। अहंकार के लिए इतनी फटकार बस थी। मैं उठ और पास वाले तालावब के किनारे जा बैठा।

तालाब में असंख्य कमल खिले थे। लेकिन उनकी तरफ़ मेरा चित्त—हमेशा का कला-रसिक चित्त—आकर्षित नहीं हुआ। वहाँ से उठकर पास की एक गढ़ी को देखने चला गया। उसमें कभी साधु रहते थे। वह किसी महंत के अखाड़े-जैसी दीख पड़ी। लेकिन उसके विषय में पूछ-ताछ करने का मन न हुआ। मैं ख़ूब धूमा, हिमालय में रहकर साधना की, और समाधान प्राप्त किया; परंतु बोधिगया का उस दिन का अनुभव कुछ और ही था।

वाप्कोस गुरुग्राम कार्यालय में हिन्दी पखवाड़े का आयोजन

प्रत्येक वर्ष की भांति इस वर्ष भी वाप्कोस के गुरूग्राम कार्यालय में दिनांक 14 सितम्बर से 29 सितम्बर 2025 तक हिन्दी पखवाड़े का आयोजन हर्षोल्लास के साथ किया गया। इस दौरान, विभिन्न प्रतियोगिताओं जैसे हिन्दी निबंध प्रतियोगिता, चित्र अभिव्यक्ति प्रतियोगिता, राजभाषा नीति-ज्ञान प्रतियोगिता तथा श्रुतलेख प्रतियोगिता का आयोजन किया गया, जिसमें कार्मिकों ने उत्साहपूर्वक बढ़चढ़ कर हिस्सा लिया। इस दौरान, आयोजित प्रतियोगिताओं की कुछ झलकियां इस प्रकार हैं:-

निबंध प्रतियोगिता

चित्र अभिव्यक्ति प्रतियोगिता

राजभाषा नीति-ज्ञान प्रतियोगिता

श्रुतलेख प्रतियोगिता

हिन्दी पखवाड़ा रिपोर्ट - हैदराबाद कार्यालय

वाप्कोस हैदराबाद कार्यालय में दिनांक 14 से 29 सितंबर, 2025 तक हिन्दी पखवाड़ा मनाया गया। हिन्दी माह को पुरस्कृत और हिंदी भाषा की अधिकतम प्रचार प्रसार के उद्देश्य से हैदराबाद कार्यालय के प्रांगण में टोलिक बैनर प्रदर्शित किया गया। 14 से 29 सितंबर, 2025 तक पखवाड़े में के दौरान दिनांक **27-09-2025 को** हिंदी से अंग्रेजी में शब्द अनुवाद प्रतियोगिता और निबंध लेखन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया।

10 मिनट की समय सीमा में इस प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। हिंदी से इंग्लिश 10 शब्द दिए गए। निबंध लेखन प्रतियोगिता का भी आयोजन किया गया। इसका विषय था **" "कृत्रिम बुद्धिमत्ता और टीम वर्क का आपसी संबंध" पर 150 शब्दों में लिखे"।**

शाम 3:00 बजे से 4:00 बजे तक की एक घंटे की कार्य समय सीमा में इस प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। प्रतियोगिता में कुल 11 अधिकारी /कर्मचारी भाग लिया।

साथ ही 29-09-2025 को अध्यक्ष एवं मुख्य अभियंता, श्री पी. साई सुरेश जी के अध्यक्षता में विभागीय राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक का आयोजन किया गया। कार्यालय के काम-काज और दैनिक व्यवहारों में हिंदी भाषा का महत्व और इस हिंदी पखवाड़े के दौरान हिंदी में की गई कार्यक्रमों के बारे में कार्यक्रम में उपस्थित कार्यालय के सभी अधिकारी/कर्मचारियों को सूचित किया गया और सब की सलाह प्रस्तुति के लिए चर्चा की गई। हिन्दी पखवाड़े के दौरान आयोजित प्रतियोगिताएं, हिंदी काम-काज के बारे में विवरण और हिन्दी के काम में बढ़ोतरी लाने सम्बन्धी जानकारी दी गई। दि. 27-09-2025 के दिन आयोजित शब्द अनुवाद और निबंध लेखन प्रतियोगिताओं के प्रतिभागियों में से एक प्रथम, दो द्वितीय, दो तृतीय और दो सांत्वना पुरस्कार के विजेताओं को घोषित कर शुभकामनाएं दी गई।

दिनांक 29-09-2025 को हिंदी पखवाड़े का अंतिम दिन होने के कारण हिन्दी पखवाड़ा सम्पूर्ण कर दिया गया। पखवाड़े में अब तक की गई हिंदी काम-काज की समीक्षा की गई और आगे भी ऐसे जारी रखने के निर्देश दिए गए।

"प्राकृतिक आपदाः- एक चुनौति"

प्रकृति के साथ खिलवाड़ का यही नतीजा होता है। जैसा कि अभि हमने हाल फिलहाल ही देखा कि भारत के पहाडी क्षेत्रों में बादल फटके बाढ़ आने जैसी खबरे लगातार सुनने को मिल रही है। उत्तरी भारत लगभग पूरा इस जलाशय में समा गया है।

हिमाचल प्रदेश, जम्मू, पठानकोट, देहरादून, पंजाब और न जाने कितने ही क्षेत्रीय मैदान इस प्राकृतिक आपदा में बह गए है। चित्र को देखकर साफ है कि अगर प्रकृति के साथ खिलवाड़ करोगे तो प्रकृति अपना बदला अच्छे से लेगी। न जाने कितने, घर बह गए कितने लोगों की जान गई, कितने मासूम जानवर मरे।

हम मनुष्यों ने 2013 वाली केदारनाथ की आपदा से कुछ नही सीखा। क्योंकि लोभ एक ऐसी लत है, जो इंसान को हैवान बना देती है। पहाड़ी क्षेत्रों में न जाने कितने ही कार्य चल रहे है, सिर्फ और सिर्फ पैसा कमाने के लिए।

पहाड़ो पर सैकड़ो ही संख्या में लग्जरी होटल, घर, रिर्जोट बना दिए गए हैं सिर्फ पैसा कमाने के लिए। जिसकि वजह से हमारी छोटी-छोटी नदियॉ विलुप्त हो गई है और उनको बहने के लिए जगह है ही नहीं। वैष्णो देवी में आयी आपदा इसका जीता जागता उदाहरण है कि वहॉ लोगों ने पहाड़ो को तोड़ कर इमारते, होटल बनाकर वहॉ की असली सुदंरता को खत्म कर दिया है और साथ में इस प्रकृति के साथ भी छेड़छाड़ करी।

भारत के उत्तरी भाग में नदियॉ अपने उफान पर हैं, जलस्तर धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है, भारत के और भी देश इसकी चपेट में है। सच तो यह है कि हमारा सिस्टम सोया हुआ है। ऐसा नही है कि सरकारो को कुछ पता नही होता, अपितु सब बिके होते है। सब पैसे खाते है और भुगतना पड़ता है हम जैसे मासूम लोगों को और जानवरों को।

एक तो हमारे देश में पहले से ही गरीबी और बेरोजगारी की समस्या है और साथ में उन गरीब लोगों को ऐसी प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना पडता है। हर साल न जाने कितने लोग बेघर हो जाते है। जिनकी रोजी रोटी इस प्रकृति के सहारे चलती है। हम इंसान भूल गए है कि यह प्रकृति हमारी मॉ जिसकी हमें सेवा करनी चाहिए। अगर हम सेवा नहीं कर सकते तो हम लोगो को कोई हक नही बनता कि हम इस प्रकृति को खतरे में डालें। इंसान भूल गया है कि वह भविष्य में अपनी आने वाली पिढ़ी को खतरे में डाल रहा है।

लोगों को सतत् पोषणीय विकास के बारे में जागरूक करना चाहिए। हमको विकास ऐसा करना चाहिए जिससे विकास भी हो और हमारी इस धरती माता को कोई नुकसान भी न पहुँचे। सरकारो के वेवजह के कंस्ट्रकशन कार्यो पर लगाम लगानी चाहिए खासकर पहाड़ी क्षत्रों में अगर हमने आज कोई कदम नही उठाया तो एसी भंयकर आपदाऐं आती रहेंगी। यह प्रकृति हमारी धरोहर है, हमारा कर्तव्य बनता है कि हम इसकी रक्षा करें। हमें ऐसी आपदाओं से निपटने के लिए अभी से ही कदम उठाने चाहिए। ताकि हम हमारी पीढ़ि को यह प्रकृति वैसे ही लौटा सकें जैसे हमारे पूर्वजों ने हमें दी है।

निष्कर्षः- हमें पूरी जिम्मेदारी से अपनी धरती मॉ को बचाना है। यह हमारा दायित्व है।

सुश्री गायत्री
सहायक (विधिक विभाग)

राजभाषा नियम/The Official Language Rule, 1976

नियम/Rule 8

कोई कर्मचारी किसी फाइल पर टिप्पण या कार्यवृत हिन्दी या अंग्रेजी में लिख सकता है ओर उससे यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह उसका अनुवाद दूसरी भाषा में प्रस्तुत करे। केन्द्रीय सरकार का कोई भी कर्मचारी, जो हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखता है, हिन्दी में किसी दस्तावेज के अंग्रेजी अनुवाद की मांग तभी कर सकता है, जब वह दस्तावेज विधिक या तकनीकी प्रकृति का हो, अन्यथा नहीं। An employee may record a note or minute on a file in Hindi or in English without being himself required to furnish a translation thereof in the other language. No Central Government employee possessing a working knowledge of Hindi may ask for an English translation of any document in Hindi except in the case of documents of legal or technical nature.

नियम/Rule 12

राजभाषा नियम, 1976 के नियम 12 के अनुसार, सरकार के प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का उत्तरदायित्व है कि वह यह सुनिश्चित करे कि राजभाषा अधिनियम और नियमों के उपबंधों और केन्द्रीय सरकार द्वारा इस बारे में जारी किए गए निर्देशों का समुचित रूप से अनुपालन हो रहा है। उसकी यह भी जिम्मेदारी है कि वह इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त और प्रभावकारी जांच के वास्ते उपाय करें। As per Rule of 12 of Official Language Rule, 1976 It shall be the responsibility of the administrative Head of each Central Government office to ensure that the provisions of the Act and these rules and directions are properly complied. He shall also be responsible to devise suitable and effective check-point for this purpose.

रश्मि रथी

ऊँच-नीच का भेद न माने, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है,
दया-धर्म जिसमें हो, सबसे वही पूज्य प्राणी है।
क्षत्रिय वही, भरी हो जिसमें निर्भयता की आग,
सबसे श्रेष्ठ वही ब्राह्मण है, हो जिसमें तप-त्याग।

नहीं फूलते कुसुम मात्र राजाओं के उपवन में,
अमित बार खिलते वे पुर से दूर कुञ्ज-कानन में।
समझे कौन रहस्य ? प्रकृति का बड़ा अनोखा हाल,
गुदड़ी में रखती चुन-चुन कर बड़े कीमती लाल।

तेजस्वी सम्मान खोजते नहीं गोत्र बतला के,
पाते हैं जग में प्रशस्ति अपना करतब दिखला के।
हीन मूल की ओर देख जग गलत कहे या ठीक,
वीर खींच कर ही रहते हैं इतिहासों में लीक।

WAPCOS
वाप्कोस लिमिटेड
(भारत सरकार का उपक्रम-जल शक्ति मंत्रालय)
(A Government of India Undertaking-Ministry of Jal Shakti)

पंजीकृत कार्यालय : 5वां तल, ''कैलाश'', 26, कस्तूरबा गांधी मार्ग, नई दिल्ली - 110 001
दूरभाष: +91-11-23313131, 23313881, फैक्स: +91-11-23313134, 23314924, ई-मेल: ho@wapcos.co.in

निगमित कार्यालय: 76-सी, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, सेक्टर-18, गुरूग्राम-122015, हरियाणा
दूरभाष: +91-124-2399428, फैक्स: +91-124-2397392, ई-मेल: mail@wapcos.co.in
ई-मेल: hindi@wapcos.co.in, वेबसाइट : http://www.wapcos.co.in